अक्षरपुरुषोत्तम संहिता के अंतर्गत

॥ सत्संगदीक्षा ॥

संस्कृत-हिन्दी

परब्रह्म श्रीस्वामिनारायण प्रबोधित
आज्ञा-उपासना के सिद्धांतों का निरूपक शास्त्र

ग्रंथकार

प्रकट ब्रह्मस्वरूप श्रीमहंतस्वामी महाराज

॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥

भगवान श्रीस्वामिनारायण एवं अक्षरब्रह्म श्रीगुणातीतानंद स्वामी
(श्रीअक्षरपुरुषोत्तम महाराज)

अक्षरपुरुषोत्तम संहिता के अंतर्गत

सत्संगदीक्षा

परब्रह्म श्रीस्वामिनारायण प्रबोधित

आज्ञा–उपासना के सिद्धांतों का निरूपक शास्त्र

: ग्रंथकार :

प्रकट ब्रह्मस्वरूप श्रीमहंतस्वामी महाराज

: संस्कृत श्लोक रचयिता :

महामहोपाध्याय साधु भद्रेशदास

प्रकाशक

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद – 380 004

प्रकाशकीय

ब्रह्मस्वरूप श्रीप्रमुखस्वामीजी महाराज के शताब्दी-पर्व पर, उनके आध्यात्मिक अनुगामी प्रकट ब्रह्मस्वरूप श्रीमहंतस्वामीजी महाराज द्वारा लिखित यह ग्रंथ आप सभी को समर्पित करते हुए आनंद की अनुभूति हो रही है।

युगों से प्रवाहित वैदिक सनातन हिंदू धर्म की आध्यात्मिक परंपरा को अनेक प्रकार से विस्तृत करनेवाले परब्रह्म भगवान श्रीस्वामिनारायण ने मौलिक अक्षरपुरुषोत्तम दर्शन प्रदान करके, कल्याण का एक शाश्वत मार्ग अनावृत किया है। शिक्षापत्री, वचनामृत आदि ग्रंथों की भेंट देकर उन्होंने बहुजनहितावह सर्वोत्तम आचार, व्यवहार, विचार और आध्यात्मिक साधना का जो मार्गदर्शन दिया है, उसमें वेदादि समग्र

शास्त्रों का सार संगृहीत है। उसी परंपरा का अनुसरण करके, उनके अनुगामी गुणातीत गुरुवर्यों ने भी गत दो शताब्दियों से आध्यात्मिक धारा को प्रवाहित कर, असंख्य मुमुक्षुओं को आध्यात्मिकता के शिखर पर आसीन किया है और असंख्य मुमुक्षुओं को ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कराई है।

सम्प्रति मुमुक्षुओं को अनुभवपूर्ण आध्यात्मिक मार्गदर्शन सरलतापूर्वक प्राप्त होता रहे, इसलिए समस्त ज्ञान की धारा को संक्षेप में समाहित करके, प्रकट ब्रह्मस्वरूप महंतस्वामीजी महाराज ने गागर में सागर के समान इस ग्रंथ को अपने हाथों से लिखकर हमें दिव्य उपहार दिया है।

इस ग्रंथ की रचना का प्रारंभ उन्होंने नवसारी में, विक्रम संवत 2076, वसंत पंचमी के पवित्र दिन, अक्षरपुरुषोत्तम दर्शन के प्रखर प्रवर्तक ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज के प्राकट्य दिवस पर, 30 जनवरी,

2020 को किया था एवं भगवान श्रीस्वामिनारायण की प्राकट्य तिथि चैत्र शुक्ल नवमी के पवित्र दिन, 2 अप्रैल, 2020 को इसकी पूर्णाहुति हुई थी। अविरत विचरण, निरंतर गतिमान सत्संग कार्यक्रम, भक्तों-संतों के साथ नित्य मुलाकात (नियमित बैठक, वार्ता आदि), निरंतर पत्र व्यवहार तथा बी.ए.पी.एस. स्वामिनारायण संस्था के विराट कार्यवहन के साथ-साथ कभी देर रात तक तो कभी प्रातः शीघ्र जागकर उन्होंने यह ग्रंथ रचा है। यह ग्रंथ लिखने के पश्चात् उन्होंने संस्था के विद्वान संतों के साथ विचार-विमर्श करके आवश्यकतानुसार भाषा को समृद्ध करने के लिए उनकी सेवाएँ भी ली हैं। जिनमें पूज्य ईश्वरचरणदास स्वामी, पूज्य विवेकसागरदास स्वामी, पूज्य आत्मस्वरूपदास स्वामी, पूज्य आनंदस्वरूपदास स्वामी, पूज्य नारायणमुनिदास स्वामी, पूज्य भद्रेशदास स्वामी आदि संतों के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस ‘सत्संगदीक्षा ग्रंथ’ को ‘अक्षरपुरुषोत्तम संहिता’ नाम के शास्त्र के एक भाग के रूप में समाविष्ट किया गया है। ‘अक्षरपुरुषोत्तम संहिता’ भगवान श्रीस्वामिनारायण-प्रबोधित तत्त्वज्ञान और भक्ति की परंपरा को विशदरूप से निरूपित करनेवाला संस्कृत शास्त्र है। संस्था के विद्वान संत महामहोपाध्याय पूज्य भद्रेशदास स्वामी ने परम पूज्य महंतस्वामीजी महाराज की आज्ञा से ‘सत्संगदीक्षा’ शास्त्र को संस्कृत-श्लोकों के रूप में ग्रथित किया है। परम पूज्य महंतस्वामीजी महाराज ने ग्रंथ के मूल शब्दों के साथ संस्कृत-श्लोकों का भली-भाँति परीक्षण तथा उसकी सार्थकता का मूल्यांकन करके आवश्यक सूचन-परिष्कार भी किए हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ का अंतिम स्वरूप उजागर हुआ।

वर्तमान में, नैनपुर में विराजमान महंतस्वामीजी महाराज ने गुरु पूर्णिमा के पवित्र अवसर पर, वेदोक्त

विधिपूर्वक पूजन करके भगवान श्रीस्वामिनारायण, अक्षरब्रह्म श्रीगुणातीतानंद स्वामी, ब्रह्मस्वरूप श्रीभगतजी महाराज, ब्रह्मस्वरूप श्रीशास्त्रीजी महाराज, ब्रह्मस्वरूप श्रीयोगीजी महाराज तथा ब्रह्मस्वरूप श्रीप्रमुखस्वामीजी महाराज के चरणों में असीम भक्तिभाव पूर्वक यह ग्रंथ अर्पण किया।

इस ग्रंथ की भेंट देकर परम पूज्य स्वामीश्री ने हम सभी पर तथा आनेवाली अनेक पीढ़ियों पर महान उपकार किया है। उनके चरणों में ऋणानुभूतिपूर्वक इस ग्रंथ को प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष की अनुभूति हो रही है।

आशा है कि यह संक्षिप्त ग्रंथ हमारी जीवनयात्रा के आध्यात्मिक पथ को अधिक सरल, सफल और सार्थक बनाएगा।

– **स्वामिनारायण अक्षरपीठ**

आषाढ कृष्ण प्रतिपदा, सन् 2020

निवेदन

‘सत्संगदीक्षा’ ग्रंथ भगवान श्रीस्वामिनारायण के छठवें आध्यात्मिक अनुगामी प्रकट ब्रह्मस्वरूप श्रीमहंतस्वामीजी महाराज ने अपने करकमलों से गुजराती भाषा में लिखा है। यह ग्रंथ परब्रह्म श्रीस्वामिनारायण भगवान द्वारा प्रबोधित आज्ञा और उपासना के सिद्धांत प्रस्तुत करता है। इस ग्रंथ को महामहोपाध्याय भद्रेशदास स्वामी ने संस्कृत में श्लोकबद्ध किया है। यह सत्संगदीक्षा ग्रंथ ‘अक्षरपुरुषोत्तम संहिता’ नामक ग्रंथ का एक भाग है। ‘अक्षरपुरुषोत्तम संहिता’ भगवान श्रीस्वामिनारायण द्वारा उपदिष्ट सिद्धांतों और भक्ति के विविध आयामों को विशदरूप से शास्त्रीय शैली में निरूपण करनेवाला शास्त्र है।

भगवान श्रीस्वामिनारायण द्वारा दीक्षित परमहंस सद्‌गुरु प्रेमानंद स्वामी ने लिखा है –

'अक्षरना वासी वा'लो आव्या अवनी पर...
अवनी पर आवी वा'ले सत्संग स्थाप्यो,
हरिजनोने कोल कल्याणनो आप्यो राज.'

अक्षराधिपति परब्रह्म भगवान श्रीस्वामिनारायण अत्यंत करुणार्द्र हो इस पृथ्वी पर पधारे तथा अनंत जीवों के परम कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने स्वयं ही परम कल्याणप्रद दिव्य सत्संग की स्थापना कर, वैदिक सनातन अक्षरपुरुषोत्तम सिद्धांत को प्रकाशित किया।

सहजानंद श्रीहरि के द्वारा प्रस्थापित सत्संग विशिष्ट है, अद्वितीय है। यह स्वामिनारायणीय सत्संग वैदिक सनातन अक्षरपुरुषोत्तम सिद्धांत को समर्पित विशिष्ट जीवनशैलीरूप है। इस विशिष्ट जीवनशैलीमय सत्संग का भगवान श्रीस्वामिनारायण

के समय से लेकर आजपर्यंत लाखों सत्संगीजन अनुसरण कर रहे हैं। इस सत्संग के शाश्वतकालीन पोषण एवं संवर्धन के लिए, भगवान श्रीस्वामिनारायण ने अक्षरब्रह्मस्वरूप गुणातीत गुरु की परंपरा को इस लोक में अविच्छिन्न रखा है।

परब्रह्म श्रीस्वामिनारायण को अभिप्रेत सत्संग के मुख्य दो घटक हैं – आज्ञा और उपासना। आज्ञा और उपासना रूप ये सिद्धांत परावाणी-स्वरूप वचनामृत ग्रंथ में निरूपित हुए हैं। परमहंसों द्वारा रचित ग्रंथ एवं कीर्तन आदि में भी तत्–तत् स्थल पर ये सिद्धांत प्रतिबिंबित होते रहे हैं। अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी ने अपने उपदेशों में परब्रह्म भगवान श्रीस्वामिनारायण के सर्वोपरि स्वरूप एवं साधना संबंधी स्पष्टता करके इन सिद्धांतों को अनेक संतों एवं हरिभक्तों के जीवन में सुदृढ किया। ब्रह्मस्वरूप भगतजी महाराज की कथावार्ता के द्वारा गुणातीतानंद स्वामी

अक्षरब्रह्म हैं एवं भगवान श्रीस्वामिनारायण परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं, ऐसे सत्संग के दिव्य सिद्धांत गूँजने लगे। ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज ने अपार कष्ट सहन कर श्रीहरि-प्रबोधित वैदिक सनातन अक्षरपुरुषोत्तम सिद्धांत को शिखरबद्ध मंदिरों के निर्माण द्वारा मूर्तिमान कर दिया। ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज ने संघनिष्ठा, सुहृद्भाव और एकता के अमृत पिलाकर स्वामिनारायणीय सत्संग को अत्यधिक सुदृढ किया। उन्होंने बाल-युवा-सत्संग-प्रवृत्ति का विस्तार किया। साप्ताहिक सभाओं के द्वारा आज्ञा–उपासनारूप सत्संग का नित्य पोषण हो, ऐसी नूतन रीति का प्रवर्तन किया।

ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामीजी महाराज ने अथक परिश्रम से इस सत्संग का रक्षण और पोषण किया। समग्र भूमंडल में भव्य मंदिरों के निर्माण के द्वारा, वैदिक सनातन धर्म को अनुसृत शास्त्रों की रचना के

द्वारा तथा अनेक युवाओं को साधुता के आभूषण से अभिमंडित कर, उन्होंने सत्संग की व्यापकता और गहनता दोनों का अभिवर्धन किया ।

श्रीहरि के द्वारा प्रवाहित यह सत्संग भागीरथी आज भी प्रकट ब्रह्मस्वरूप महंतस्वामीजी महाराज की छत्रछाया में अनेक मुमुक्षुओं को परम मुक्ति का पीयूषपान करवा रही है। एक सहस्र से अधिक संतों एवं लाखों हरिभक्तों का समुदाय, सत्संग के सिद्धांतों से दीक्षित होकर धन्यता का अनुभव कर रहा है; एक इष्टदेव, एक गुरु और एक सिद्धांत को जीवन का केन्द्र बनाकर एकता और दिव्यता के परमसुख की अनुभूति कर रहा है।

संप्रदाय में भगवान श्रीस्वामिनारायण के समय से लेकर समय-समय पर आज्ञा और उपासना के सिद्धांतों को परिपुष्ट करते विविध शास्त्रों की रचना होती आई है। उनमें तत्त्वज्ञान, आंतरिक साधना,

भक्ति की रीति, आचारपद्धति इत्यादि के निरूपण के द्वारा सत्संग की जीवनशैली का प्रतिपादन हुआ है। संप्रदाय के अनेक शास्त्रों में निरूपित इन सिद्धांतों का सार, सरल शब्दों में तथा संक्षिप्त में संकलित हो और उसे एक ग्रंथ का आकार दिया जाए – ऐसी प्रकट ब्रह्मस्वरूप महंतस्वामीजी महाराज की दीर्घ समय से इच्छा थी। अतः उन्होंने इस विषय पर वरिष्ठ संतों के साथ विचार-विमर्श भी किया। अंततः सबकी विनती से उन्होंने स्वयं इस ग्रंथ के लेखन की सेवा को सहर्ष स्वीकार किया।

इस ग्रंथ में भगवान श्रीस्वामिनारायण साक्षात् परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण हैं, सर्वोपरि सर्वकर्ता, सदा दिव्य साकार, और प्रकट हैं; गुणातीत गुरु अक्षरब्रह्म हैं, परमात्मा के अखंड धारक होने से प्रत्यक्ष नारायणस्वरूप हैं, मुमुक्षुओं के लिए शास्त्रोक्त ब्राह्मी स्थिति का आदर्श हैं; उनके प्रति दृढ प्रीति और

आत्मबुद्धि साधना का सार है – इत्यादि सिद्धांतों की स्पष्टता हुई है। अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की दासभाव से भक्ति करनी चाहिए, यह सिद्धांत यहाँ सम्यक् प्रतिपादित हुआ है। इसके साथ ही आंतरिक साधना में आवश्यक विचार यथा परब्रह्म की प्राप्ति का विचार, भगवान के कर्तृत्व का विचार, भगवान की प्रसन्नता का विचार, आत्मविचार, संसार की नश्वरता का विचार, भगवत्संबंध की महिमा का विचार, गुणग्रहण, दिव्यभाव, दासभाव, अंतर्दृष्टि इत्यादि का समावेश यहाँ पर हुआ है। तदुपरांत बलहीन बातों का परित्याग, कुभाव-अवगुण से दूरी, भक्तों का पक्ष आदि सिद्धांतों को भी समाविष्ट किया गया है। इसके साथ मंदिरों की स्थापना का उद्देश्य तथा मंदिरों में दर्शन आदि की विविध रीतियों का भी यहाँ पर निर्देश है। इसके अतिरिक्त सत्संगी के लिए विहित नित्य विधि, सदाचार, नियम-धर्म, साप्ताहिक

सत्संगसभा, घरसभा, घरमंदिर में भक्ति करने की पद्धति, नित्यपूजा, ध्यान, मानसी इत्यादि नित्य साधना भी इस ग्रंथ में सुग्रथित है।

इस ग्रंथ के शीर्षक में प्रयुक्त 'दीक्षा' शब्द का अर्थ दृढ संकल्प, अचल निश्चय और सम्यक् समर्पण है। सत्संग के आज्ञा–उपासना से संबंधित सिद्धांतों को जीवन में सुदृढ करने का संकल्प, उन सिद्धांतों के अचल निश्चय की प्राप्ति तथा उन सिद्धांतों के प्रति सम्यक् समर्पण, यह जीवन संदेश यहाँ पर प्रतिध्वनित हुआ है।

इस प्रकार भगवान श्रीस्वामिनारायण द्वारा प्रस्थापित और गुणातीत गुरुपरंपरा के द्वारा प्रवर्तित सत्संग में आजपर्यंत जो कुछ ज्ञान और आचरण अपेक्षित है तथा जो कुछ लाखों सत्संगीजनों के जीवन में अभिव्यक्त हो रहा है, वह सब गागर में सागर की भाँति इस 'सत्संगदीक्षा' ग्रंथ में समाविष्ट

किया गया है।

चैत्री विक्रम संवत् 2077, आषाढ शुक्ल पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा, दिनांक 5 जुलाई 2020 के पवित्र पर्व पर, महंतस्वामीजी महाराज ने इस ग्रंथ का प्रथम पूजन करके इसका विमोचन किया। इसी दिन उन्होंने सभी संतों एवं हरिभक्तों को आज्ञा की थी कि इस ग्रंथ में से प्रतिदिन 5 श्लोकों का अवश्य पठन करें।

यह 'सत्संगदीक्षा' ग्रंथ प्रकट गुरुहरि महंत-स्वामीजी महाराज ने प्रमुखस्वामीजी महाराज की जन्म-शताब्दी के अर्घ्य के रूप में भगवान श्रीस्वामिनारायण तथा गुणातीत गुरुवर्यों के चरणों में समर्पित किया है।

निःसंदेह, श्रीहरि तथा अक्षरब्रह्मस्वरूप गुणातीत गुरुवर्यों के हृदयगत अभिप्रायरूप 'सत्संग' को नित्य जीवन में चरितार्थ करने के लिए दृढसंकल्परूप 'दीक्षा' का नित्य स्मरण करवाते इस ग्रंथ को रचकर,

प्रकट ब्रह्मस्वरूप गुरुहरि महंतस्वामीजी महाराज ने समग्र सत्संग समुदाय पर एक महान उपकार किया है। उनके इस उपकार के लिए हम सदैव उनके ऋणी रहेंगे। इस ग्रंथ को संस्कृत में श्लोकबद्ध करनेवाले महामहोपाध्याय भद्रेशदासस्वामीजी भी धन्यवादार्ह हैं।

वैदिक सनातन धर्म के अर्करूप इस 'सत्संगदीक्षा' शास्त्र के नित्य पठन, मनन, निदिध्यासन के द्वारा हम यथार्थतः स्वामिनारायणीय सत्संग की 'दीक्षा' प्राप्त करें यही अभ्यर्थना।

– साधु ईश्वरचरणदास

5 जुलाई 2020

गुरुपूर्णिमा, चैत्री विक्रम संवत् 2077

अहमदाबाद, गुजरात

HH MAHANT SWAMI MAHARAJ
(Swami Keshavjivandas)

નેનપુર
૭.૭.'૨૦
મંગળવાર

સ્વામીશ્રીજી
પ.પૂ. પ્રમુખ સ્વામી

B.A.P.S સંસ્થાના તમામ આશ્રિતો
પ્રતિ,

સ્વામી કેશવજીવનદાસના કલ્યાણ હેતુક
જયશ્રી સ્વામિનારાયણ.

વિ. સત્સંગ દીક્ષા ગ્રંથ મહારાજ સ્વામીની કૃપાથી તૈયાર થયો છે. હવે આપણા બધાએ તેના ઓછામાં ઓછા પાંચ શ્લોકોનું વાંચન દરરોજ કરવું. જેનામાં શક્તિ અને આવડત હોય તેઓ સંસ્કૃત શ્લોકો વાંચે અને યથા શક્તિ મુખપાઠ કરે. એવી અમારી રુચિ છે.

બાળકો-બાળિકાઓ, કિશોરો-કિશોરીઓ, યુવકો-યુવતીઓ મુખપાઠ કરી અક્ષર-પુરુષોત્તમનો ઉદ્ઘોષ કરે. યોગી બાપા અને પ્રમુખ સ્વામી ખૂબ રાજી થશે.

જયશ્રી સ્વામિનારાયણ

B.A.P.S. Swaminarayan Mandir, Shahibaug Road, Ahmedabad – 380 004. Gujarat. India
Email: letters@in.baps.org • www.baps.org

॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥

सत्संगदीक्षा

स्वामिनारायणः साक्षाद् अक्षरपुरुषोत्तमः।
सर्वेभ्यः परमां शान्तिम् आनन्दं सुखमर्पयेत्॥ १॥

भगवान श्रीस्वामिनारायण अर्थात् साक्षात् श्रीअक्षरपुरुषोत्तम महाराज सभी को परम शांति, आनंद और सुख प्रदान करें। (1)

देहोऽयं साधनं मुक्तेर्न भोगमात्रसाधनम्।
दुर्लभो नश्वरश्चाऽयं वारंवारं न लभ्यते॥ २॥

यह शरीर मुक्ति का साधन है, केवल भोग का नहीं। दुर्लभ और नश्वर यह शरीर बार बार नहीं मिलता। (2)

लौकिको व्यवहारस्तु देहनिर्वाहहेतुकः।
नैव स परमं लक्ष्यम् अस्य मनुष्यजन्मनः॥ ३॥

लौकिक व्यवहार तो शरीर के निर्वाह के लिए है। वह इस मनुष्य जन्म का परम लक्ष्य नहीं है। (3)

नाशाय सर्वदोषाणां ब्रह्मस्थितेरवाप्तये।
कर्तुं भगवतो भक्तिम् अस्य देहस्य लम्भनम्॥ ४॥
सर्वमिदं हि सत्सङ्गाल्लभ्यते निश्चितं जनैः।
अतः सदैव सत्सङ्गः करणीयो मुमुक्षुभिः॥ ५॥

सभी दोषों के नाश के लिए, ब्रह्मस्थिति पाने एवं भगवान की भक्ति करने के लिए यह शरीर प्राप्त हुआ है। ये सब कुछ सत्संग करने से अवश्य प्राप्त होता है। इसलिए मुमुक्षुओं को सदैव सत्संग करना चाहिए। (4-5)

सत्सङ्गः स्थापितस्तस्माद् दिव्योऽयं परब्रह्मणा।
स्वामिनारायणेनेह साक्षादेवाऽवतीर्य च॥ ६॥

इसी उद्देश्य से परब्रह्म श्रीस्वामिनारायण ने इस लोक में साक्षात् अवतरित होकर इस दिव्य सत्संग

की स्थापना की। (6)

सत्सङ्गस्याऽस्य विज्ञानं मुमुक्षूणां भवेदिति।
शास्त्रं सत्सङ्गदीक्षेति शुभाऽऽशयाद् विरच्यते॥ ७॥

इस सत्संग का ज्ञान मुमुक्षुओं को प्राप्त हो, इस शुभ आशय से 'सत्संगदीक्षा' नामक शास्त्र की रचना की जा रही है। (7)

सत्यस्य स्वात्मनः सङ्गः सत्यस्य परमात्मनः।
सत्यस्य च गुरोः सङ्गः सच्छास्त्राणां तथैव च॥ ८॥
विज्ञातव्यमिदं सत्यं सत्सङ्गस्य हि लक्षणम्।
कुर्वन्नेवंविधं दिव्यं सत्सङ्गं स्यात् सुखी जनः॥ ९॥

सत्यस्वरूप आत्मा का संग करना, सत्यस्वरूप परमात्मा का संग करना, सत्यस्वरूप गुरु का संग करना एवं सच्छास्त्र का संग करना यह सत्संग का यथार्थ लक्षण जानें। ऐसा दिव्य सत्संग करनेवाला मनुष्य सुखी होता है। (8-9)

दीक्षेति दृढसङ्कल्पः सश्रद्धं निश्चयोऽचलः।
सम्यक् समर्पणं प्रीत्या निष्ठा व्रतं दृढाश्रयः॥ १०॥

दीक्षा अर्थात् दृढ संकल्प, श्रद्धा के सहित अविचल निश्चय, सम्यक् समर्पण, प्रीतिपूर्वक निष्ठा, व्रत एवं दृढ आश्रय। (10)

शास्त्रेऽस्मिञ्ज्ञापिता स्पष्टम् आज्ञोपासनपद्धतिः।
परमात्म-परब्रह्म-सहजानन्द-दर्शिता॥ ११॥

इस शास्त्र में परब्रह्म सहजानंद परमात्मा के द्वारा दर्शित आज्ञा तथा उपासना की पद्धति स्पष्ट रूप से ज्ञापित की गई है। (11)

सत्सङ्गाऽधिकृतः सर्वे सर्वे सुखाऽधिकारिणः।
सर्वेऽर्हा ब्रह्मविद्यायां नार्यश्चैव नरास्तथा॥ १२॥

पुरुष तथा महिलाएँ सभी सत्संग के अधिकारी हैं, सभी सुख के अधिकारी हैं और सभी ब्रह्मविद्या के अधिकारी हैं। (12)

नैव न्यूनाधिकत्वं स्यात् सत्सङ्गे लिङ्गभेदतः।
स्वस्वमर्यादया सर्वे भक्त्या मुक्तिं समाप्नुयुः ॥ १३ ॥

सत्संग में लिंगभेद से न्यूनता या अधिकता कदापि न समझें। सभी अपनी-अपनी मर्यादा में रहकर भक्ति से मुक्ति पा सकते हैं। (13)

सर्ववर्णगताः सर्वा नार्यः सर्वे नरास्तथा।
सत्सङ्गे ब्रह्मविद्यायां मोक्षे सदाऽधिकारिणः ॥ १४ ॥
न न्यूनाऽधिकता कार्या वर्णाऽऽधारेण कर्हिचित्।
त्यक्त्वा स्ववर्णमानं च सेवा कार्या मिथः समैः ॥ १५ ॥
जात्या नैव महान् कोऽपि नैव न्यूनस्तथा यतः।
जात्या क्लेशो न कर्तव्यः सुखं सत्सङ्गमाचरेत् ॥ १६ ॥

सकल वर्णों की सभी महिलाएँ तथा सभी पुरुष सर्वदा सत्संग, ब्रह्मविद्या तथा मोक्ष के अधिकारी हैं। वर्ण के आधार पर कभी न्यूनाधिक भाव न करें। सभी जन अपने वर्ण के मान का त्याग

कर परस्पर सेवा करें। जाति से कोई महान नहीं है और न्यून भी नहीं है। अतः जाति-पाँति के आधार पर क्लेश न करें और सुखपूर्वक सत्संग करें। (14-16)

सर्वेऽधिकारिणो मोक्षे गृहिणस्त्यागिनोऽपि च।
न न्यूनाऽधिकता तत्र सर्वे भक्ता यतः प्रभोः॥ १७॥

गृहस्थ तथा त्यागी सभी मोक्ष के अधिकारी हैं। उनमें न्यूनाधिकभाव नहीं है, क्योंकि गृहस्थ या त्यागी सभी भगवान के भक्त हैं। (17)

स्वामिनारायणेऽनन्य - दृढपरमभक्तये।
गृहीत्वाऽऽश्रयदीक्षाया मन्त्रं सत्सङ्गमाप्नुयात्॥ १८॥

भगवान श्रीस्वामिनारायण के प्रति अनन्य, दृढ तथा परम भक्ति के लिए आश्रयदीक्षामंत्र ग्रहण करके सत्संग प्राप्त करें। (18)

आश्रयदीक्षामन्त्रश्चैवंविधः –
धन्योऽस्मि पूर्णकामोऽस्मि निष्पापो निर्भयः सुखी।
अक्षरगुरुयोगेन स्वामिनारायणाऽऽश्रयात्॥ १९॥

आश्रयदीक्षामंत्र इस प्रकार है –
धन्योस्मि पूर्णकामोस्मि निष्पापो निर्भयः सुखी।
अक्षरगुरुयोगेन स्वामिनारायणाश्रयात्॥[1]
(19)

आश्रयेत् सहजानन्दं हरिं ब्रह्माऽक्षरं तथा।
गुणातीतं गुरुं प्रीत्या मुमुक्षुः स्वात्ममुक्तये॥ २०॥

मुमुक्षु अपनी आत्मा की मुक्ति के लिए सहजानंद श्रीहरि तथा अक्षरब्रह्मस्वरूप गुणातीत गुरु का प्रीतिपूर्वक आश्रय करे। (20)

---

1. मंत्र का उच्चारण उपर्युक्त प्रकार से ही करें। मंत्र का अर्थ इस प्रकार है : अक्षरब्रह्म गुरु के योग से भगवान श्रीस्वामिनारायण का आश्रय करने से मैं धन्य हूँ, पूर्णकाम हूँ, निष्पाप, निर्भय और सुखी हूँ।

काष्ठजां द्विगुणां मालां कण्ठे सदैव धारयेत्।
सत्सङ्गं हि समाश्रित्य सत्सङ्गनियमांस्तथा॥ २१॥

सत्संग का आश्रय करके गले में सदैव काष्ठ की दोलड़ी कंठी धारण करे तथा सत्संग के नियम धारण करे। (21)

गुरुं ब्रह्मस्वरूपं तु विना न संभवेद् भवे।
तत्त्वतो ब्रह्मविद्यायाः साक्षात्कारो हि जीवने॥ २२॥

इस संसार में ब्रह्मस्वरूप गुरु के बिना जीवन में ब्रह्मविद्या का तत्त्वतः साक्षात्कार संभव नहीं है। (22)

नोत्तमो निर्विकल्पश्च निश्चयः परमात्मनः।
न स्वात्मब्रह्मभावोऽपि ब्रह्माऽक्षरं गुरुं विना॥ २३॥

अक्षरब्रह्म गुरु के बिना परमात्मा का उत्तम निर्विकल्प निश्चय नहीं होता तथा अपनी आत्मा में ब्रह्मभाव भी प्राप्त नहीं होता। (23)

नैवाऽपि तत्त्वतो भक्तिः परमानन्दप्रापणम्।
नाऽपि त्रिविधतापानां नाशो ब्रह्मगुरुं विना॥ २४॥

ब्रह्मस्वरूप गुरु के बिना यथार्थ भक्ति भी नहीं होती, परम आनंद की प्राप्ति भी नहीं होती और त्रिविध ताप का नाश भी नहीं होता। (24)

अतः समाश्रयेन्नित्यं प्रत्यक्षमक्षरं गुरुम्।
सर्वसिद्धिकरं दिव्यं परमात्माऽनुभावकम्॥ २५॥

अतः सर्वार्थ-सिद्धिकर तथा परमात्मा का अनुभव करानेवाले प्रत्यक्ष अक्षरब्रह्म गुरु का आश्रय सदैव करें। (25)

सर्वं दुर्व्यसनं त्याज्यं सर्वैः सत्सङ्गिभिः सदा।
अनेकरोगदुःखानां कारणं व्यसनं यतः॥ २६॥

सभी सत्संगी हर प्रकार के दुर्व्यसनों का सदैव त्याग करें। क्योंकि व्यसन अनेक रोगों तथा दुःखों का कारण है। (26)

सुराभङ्गातमालादि यद् यद् भवेद्धि मादकम्।
तद् भक्षयेत् पिबेन्नैव धूम्रपानमपि त्यजेत्॥ २७॥

मदिरा, भाँग, तम्बाकू इत्यादि जो भी पदार्थ मादक हों उन्हें कभी भी न खाएँ, न ही पीएँ तथा धूम्रपान का भी त्याग करें। (27)

परित्याज्यं सदा द्यूतं सर्वैः सर्वप्रकारकम्।
त्यक्तव्यो व्यभिचारश्च नारीभिः पुरुषैस्तथा॥ २८॥

सभी महिलाएँ तथा पुरुष हर प्रकार के जुए तथा व्यभिचार का त्याग करें। (28)

मांसं मत्स्यं तथाऽण्डानि भक्षयेयुर्न कर्हिचित्।
पलाण्डुं लशुनं हिङ्गु न च सत्सङ्गिनो जनाः॥ २९॥

सत्संगी जन मांस, मछली, अंडे तथा प्याज, लहसुन और हींग कदापि न खाएँ। (29)

पातव्यं गालितं पेयं जलं दुग्धादिकं तथा।
खाद्यं पानमशुद्धं यद् गृह्णीयाद् वस्तु तन्नहि॥ ३०॥

जल तथा दूध इत्यादि पेय पदार्थ छाने हुए ही ग्रहण करें। जो खाद्य वस्तु तथा पेय अशुद्ध हों, उन्हें कदापि ग्रहण न करें। (30)

चौर्यं न कर्हिचित् कार्यं सत्सङ्गमाश्रितैर्जनैः।
धर्मार्थमपि नो कार्यं चोरकार्यं तु कर्हिचित्॥ ३१॥

सत्संगी जन चोरी कदापि न करें। धर्म के लिए भी कभी चोरी न करें। (31)

नैवाऽन्यस्वामिकं ग्राह्यं तदनुज्ञां विना स्वयम्।
पुष्पफलाद्यपि वस्तु सूक्ष्मचौर्यं तदुच्यते॥ ३२॥

पुष्प, फल आदि वस्तुएँ भी उनके स्वामी की अनुमति के बिना न लें। बिना अनुमति के वस्तु लेना सूक्ष्म चोरी कहलाती है। (32)

मनुष्याणां पशूनां वा मत्कुणादेश्च पक्षिणाम्।
केषाञ्चिज्जीवजन्तूनां हिंसा कार्या न कर्हिचित्॥ ३३॥

अहिंसा परमो धर्मो हिंसा त्वधर्मरूपिणी।
श्रुतिस्मृत्यादिशास्त्रेषु स्फुटमेवं प्रकीर्तितम्॥ ३४॥

मनुष्य, पशु, पक्षी तथा खटमल आदि किसी भी जीवजंतु की हिंसा कदापि न करें। अहिंसा परम धर्म है, हिंसा अधर्म है; ऐसा श्रुति-स्मृति आदि शास्त्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है।(33-34)

यागार्थमप्यजादीनां निर्दोषाणां हि प्राणिनाम्।
हिंसनं नैव कर्तव्यं सत्सङ्गिभिः कदाचन॥ ३५॥

सत्संगी यज्ञ के लिए भी बकरे आदि निर्दोष प्राणियों की हिंसा कदापि न करें।(35)

यागादिके च कर्तव्ये सिद्धान्तं सांप्रदायिकम्।
अनुसृत्य हि कर्तव्यं हिंसारहितमेव तत्॥ ३६॥

यज्ञ आदि करना हो, तब संप्रदाय के सिद्धांत के अनुसार हिंसारहित ही करें।(36)

मत्वाऽपि यज्ञशेषं च वाऽपि देवनिवेदितम्।
मांसं कदापि भक्ष्यं न सत्सङ्गमाश्रितैर्जनैः॥ ३७॥

यज्ञ का शेष मानकर या देवता के प्रासादिक नैवेद्य के रूप में भी सत्संगीजन मांस कदापि न खाएँ। (37)

कस्याऽपि ताडनं नैव करणीयं कदाचन।
अपशब्दाऽपमानादि-सूक्ष्महिंसाऽपि नैव च॥ ३८॥

कदापि किसी का ताड़न न करें। अपशब्द कहना, अपमानित करना इत्यादि किसी भी प्रकार की सूक्ष्म हिंसा भी न करें। (38)

सत्ता-कीर्ति-धन-द्रव्य-स्त्री-पुरुषादिकाऽऽप्तये।
मानेर्ष्याक्रोधतश्चाऽपि हिंसां नैव समाचरेत्॥ ३९॥

धन, सत्ता, कीर्ति, स्त्री, पुरुष इत्यादि की प्राप्ति के लिए तथा मान, ईर्ष्या या क्रोध से भी हिंसा न करें। (39)

मनसा वचसा वाऽपि कर्मणा हिंसने कृते।
तत्स्थितो दुःख्यते नूनं स्वामिनारायणो हरिः॥ ४०॥

मन से, वचन से या कर्म से हिंसा करने से उसमें विराजमान स्वामिनारायण भगवान दुःखित होते हैं। (40)

आत्मघातोऽपि हिंसैव न कार्योऽतः कदाचन।
पतनगलबन्धाद्यैर्विषभक्षादिभिस्तथा॥ ४१ ॥

आत्महत्या भी हिंसा ही है। ऊपर से गिरना, फाँसी लगाना, विषपान करना इत्यादि किसी भी प्रकार से आत्महत्या कदापि न करें। (41)

दुःखलज्जाभयक्रोध - रोगाद्यापत्तिकारणात्।
धर्मार्ऽर्थमपि कश्चिद्धि हन्यान्न स्वं न वा परम्॥ ४२॥

दुःख, लज्जा, भय, क्रोध, रोग इत्यादि आपत्तियों के कारण, या धर्म के लिए भी कोई मनुष्य स्वयं की अथवा अन्य किसी की हत्या न करे। (42)

तीर्थेऽपि नैव कर्तव्य आत्मघातो मुमुक्षुभिः।
नैवाऽपि मोक्षपुण्याप्तिभावात् कार्यः स तत्र च॥ ४३॥

मुमुक्षुजन तीर्थ में भी कभी आत्महत्या न करें। मोक्ष या पुण्य पाने की भावना से भी तीर्थ में आत्महत्या कदापि न करें। (43)

भगवान् सर्वकर्ताऽस्ति दयालुः सर्वरक्षकः।
स एव नाशकः सर्व-सङ्कटानां सदा मम॥ ४४॥

भगवान सर्वकर्ता हैं, दयालु हैं, सर्व के रक्षक हैं और वे ही सदा मेरे सभी संकटों के नाशक हैं। (44)

भगवान् कुरुते यद्धि हितार्थमेव तत्सदा।
प्रारब्धं मे तदिच्छैव स एव तारको मम॥ ४५॥

भगवान जो भी करते हैं, वह सदैव भले के लिए ही होता है। उनकी इच्छा ही मेरा प्रारब्ध है। वे ही मेरे तारणहार हैं। (45)

नूनं नङ्क्ष्यन्ति मे विघ्नाः पापदोषाश्च दुर्गुणाः।
नूनं प्राप्स्याम्यहं शान्तिमानन्दं परमं सुखम्॥ ४६॥

मेरे विघ्न, पाप, दोष तथा दुर्गुण अवश्य नष्ट होंगे। मैं शांति, सुख और परम आनंद को अवश्य प्राप्त करूँगा। (46)

यतो मां मिलितः साक्षाद् अक्षरपुरुषोत्तमः।
निश्चयेन तरिष्यामि दुःखजातं हि तद्बलात्॥ ४७॥

क्योंकि मुझे साक्षात् श्रीअक्षरपुरुषोत्तम महाराज मिले हैं। उनके बल से मैं निश्चय ही दुःखों को पार कर जाऊँगा। (47)

विचार्यैवं बलं रक्षेद् नाऽऽश्रितो निर्बलो भवेत्।
आनन्दितो भवेन्नित्यं भगवद्बलवैभवात्॥ ४८॥

इस तरह विचार का बल रखकर आश्रित भक्त कदापि हिम्मत न हारे और भगवान के बल से सदा आनंद में रहे। (48)

ष्ठीवनं मलमूत्रादिविसर्जनं स्थलेषु च।
शास्त्रलोकनिषिद्धेषु न कर्तव्यं कदाचन॥ ४९॥

शास्त्रनिषिद्ध तथा लोकवर्जित स्थानों में कदापि न थूकें तथा मल-मूत्रादि न करें। (49)

शुद्धिः सर्वविधा पाल्या बाह्या चाऽऽभ्यन्तरा सदा।
शुद्धिप्रियः प्रसीदेच्च शुद्धिमति जने हरिः॥ ५०॥

सभी प्रकार की बाह्य और आंतरिक शुद्धि का सदा पालन करें। श्रीहरि को शुद्धि प्रिय है और शुद्धियुक्त मनुष्य पर वे प्रसन्न होते हैं। (50)

सत्सङ्गिभिः प्रबोद्धव्यं पूर्वं सूर्योदयात् सदा।
ततः स्नानादिकं कृत्वा धर्तव्यं शुद्धवस्त्रकम्॥ ५१॥

सत्संगी सदा सूर्योदय से पूर्व जागें। तत्पश्चात् स्नान आदि करके शुद्ध वस्त्र धारण करें। (51)

पूर्वस्यामुत्तरस्यां वा दिशि कृत्वा मुखं ततः।
शुद्धाऽऽसनोपविष्टः सन् नित्यपूजां समाचरेत्॥ ५२॥

तत्पश्चात् पूर्व अथवा उत्तर दिशा में मुख रखकर शुद्ध आसन पर बैठकर नित्यपूजा करें। (52)

प्रभुपूजोपयुक्तेन चन्दनेनोर्ध्वपुण्ड्रकम्।
भाले हि तिलकं कुर्यात् कुङ्कुमेन च चन्द्रकम्॥ ५३॥
उरसि हस्तयोश्चन्द्रं तिलकं चन्दनेन च।
स्वामिनारायणं मन्त्रं जपन् कुर्याद् गुरुं स्मरन्॥ ५४॥

स्वामिनारायण मंत्र जपते हुए तथा गुरु का स्मरण करते हुए, ललाट में भगवान की पूजा में उपयुक्त प्रसादीभूत चंदन से ऊर्ध्वपुंड्र तिलक करें और कुमकुम से चन्द्रक (टीका) करें तथा छाती और दोनों भुजाओं पर चंदन से तिलक और चन्द्रक करें। (53-54)

केवलं चन्द्रकः स्त्रीभिः कर्तव्यस्तिलकं नहि।
कुङ्कुमद्रव्यतो भाले स्मरन्तीभिर्हरिं गुरुम्॥ ५५॥

महिलाएँ भगवान तथा गुरु का स्मरण करते हुए

ललाट में केवल कुमकुम का चन्द्रक करें, तिलक न करें। (55)

ततः पूजाऽधिकाराय भक्तः सत्सङ्गमाश्रितः।
कुर्यादात्मविचारं च प्रतापं चिन्तयन् हरेः॥ ५६॥
अक्षरमहमित्येवं भक्त्या प्रसन्नचेतसा।
पुरुषोत्तमदासोऽस्मि मन्त्रमेतं वदेच्छुचिम्॥ ५७॥
अक्षरब्रह्मरूपत्वं स्वस्याऽऽत्मनि विभावयेत्।
कुर्याच्च मानसीं पूजां शान्त एकाग्रचेतसा॥ ५८॥

तत्पश्चात् सत्संग का आश्रित भक्त पूजा के अधिकार के लिए भगवान के प्रताप का चिंतन करते हुए आत्मविचार करे। प्रसन्न चित्त से भक्तिभावपूर्वक 'अक्षरमहं पुरुषोत्तमदासोस्मि'[2] इस पवित्र मंत्र का उच्चारण करे। अपनी आत्मा में

2. मंत्र का उच्चारण उपर्युक्त प्रकार से ही करें। मंत्र का अर्थ इस प्रकार है : अक्षर ऐसा मैं पुरुषोत्तम का दास हूँ।

अक्षरब्रह्म की विभावना करे और शांत होकर, एकाग्र चित्त से मानसी पूजा करे। (56-58)

हरिर्ब्रह्मगुरुश्चैव भवतो मोक्षदायकौ।
तयोरेव हि कर्तव्यं ध्यानं मानसपूजनम्॥ ५९ ॥

भगवान और ब्रह्मस्वरूप गुरु ही मोक्षदाता हैं। उनका ही ध्यान तथा मानसी पूजा करें। (59)

स्थापयेच्चित्रमूर्तीश्च शुचिवस्त्रोपरि ततः।
दर्शनं स्याद् यथा सम्यक् तथा हि भक्तिभावतः॥ ६० ॥

तत्पश्चात् पवित्र वस्त्र पर चित्रप्रतिमाओं का भलीभाँति दर्शन हो इस प्रकार स्थापन करें। (60)

मध्ये तु स्थापयेत्तत्र ह्यक्षरपुरुषोत्तमौ।
स्वामिनं हि गुणातीतं महाराजं च तत्परम्॥ ६१ ॥

इसमें मध्य में अक्षर तथा पुरुषोत्तम की मूर्ति स्थापित करें अर्थात् गुणातीतानंद स्वामी तथा उनके भी अधिपति भगवान श्रीस्वामिनारायण को स्थापित

करें। (61)

प्रमुखस्वामिपर्यन्तं प्रत्येकगुरुमूर्तयः।
प्रस्थाप्याः सेवितानां च प्रत्यक्षं मूर्तयः स्वयम्॥ ६२॥

तत्पश्चात् प्रमुखस्वामीजी महाराज-पर्यंत प्रत्येक गुरु की मूर्ति स्थापित करें तथा जिन गुरुओं का स्वयं ने प्रत्यक्ष सेवन किया हो, उन गुरुओं की मूर्तियाँ स्थापित करें। (62)

आह्वानश्लोकमुच्चार्य हरिं च गुरुमाह्वयेत्।
हस्तौ बद्ध्वा नमस्कारं कुर्याद्धि दासभावतः॥ ६३॥

उसके पश्चात् आह्वान श्लोक बोलकर भगवान तथा गुरुओं का आह्वान करें। दोनों हाथ जोड़कर दासभाव से नमस्कार करें। (63)

आह्वानमन्त्रश्चैवंविधः -

उत्तिष्ठ सहजानन्द श्रीहरे पुरुषोत्तम।
गुणातीताऽक्षर ब्रह्मन्नुत्तिष्ठ कृपया गुरो॥ ६४॥

आगम्यतां हि पूजार्थम् आगम्यतां मदात्मतः।
सान्निध्याद् दर्शनाद् दिव्यात् सौभाग्यं वर्धते मम॥ ६५ ॥

आह्वान मंत्र इस प्रकार है –

उत्तिष्ठ सहजानन्द श्रीहरे पुरुषोत्तम।
गुणातीताक्षर ब्रह्मन् उत्तिष्ठ कृपया गुरो॥
आगम्यतां हि पूजार्थम् आगम्यतां मदात्मतः।
सान्निध्याद् दर्शनाद् दिव्यात् सौभाग्यं वर्धते मम॥[3]

(64-65)

मालामावर्तयेद् मन्त्रं स्वामिनारायणं जपन्।
महिम्ना दर्शनं कुर्वन् मूर्तीनां स्थिरचेतसा॥ ६६ ॥

---

3. मंत्र का उच्चारण उपर्युक्त प्रकार से ही करें। मंत्र का अर्थ इस प्रकार है: हे सहजानंद श्रीहरि! हे पुरुषोत्तम! कृपया जागिए। हे अक्षरब्रह्म गुणातीत गुरु! कृपया जागिए। मेरी पूजा को स्वीकार करने के लिए मेरी आत्मा में से पधारिए। आपके दिव्य सांनिध्य और दर्शन से मेरे सौभाग्य की अभिवृद्धि होती है।

एकपादोत्थितो भूत्वा मालाम् आवर्तयेत् ततः।
तपस ऊर्ध्वहस्तः सन् कुर्वाणो मूर्तिदर्शनम्॥ ६७॥

तत्पश्चात् स्थिर चित्त से महिमापूर्वक मूर्तियों के दर्शन करते-करते स्वामिनारायण मंत्र जपते हुए माला फेरें। तदनन्तर एक पैर पर खड़े होकर, हाथ ऊपर उठाकर मूर्तियों के दर्शन करते हुए तप की माला फेरें। (66-67)

ततः संचिन्तयन् कुर्याद् अक्षरपुरुषोत्तमम्।
व्यापकं सर्वकेन्द्रं च प्रतिमानां प्रदक्षिणाः॥ ६८॥

तत्पश्चात् सभी के केंद्र समान और सर्वत्र व्यापक अक्षरपुरुषोत्तम महाराज का चिंतन करते हुए प्रदक्षिणा करें। (68)

साष्टाङ्गा दण्डवत् कार्याः प्रणामाः पुरुषैस्ततः।
नारीभिस्तूपविश्यैव पञ्चाङ्गा दासभावतः॥ ६९॥

तत्पश्चात् दासभाव से पुरुष साष्टांग दंडवत्

प्रणाम करें और महिलाएँ बैठकर पंचांग प्रणाम करें। (69)

प्रणामो दण्डवच्चैकः क्षमायाचनपूर्वकम्।
भक्तद्रोहनिवारार्थं कार्योऽधिको हि प्रत्यहम्॥ ७० ॥

किसी भक्त का अपराध हुआ हो तो उसके निवारण के लिए क्षमायाचनापूर्वक प्रतिदिन एक दंडवत् प्रणाम अधिक करें। (70)

दिव्यभावेन भक्त्या च तदनु प्रार्थयेज्जपन्।
स्वामिनारायणं मन्त्रं शुभसङ्कल्पपूर्तये॥ ७१ ॥

तत्पश्चात् शुभ संकल्पों की पूर्ति के लिए स्वामिनारायण मंत्र जपते हुए दिव्यभाव और भक्ति से प्रार्थना करें। (71)

भक्तितः पूजयित्वैवम् अक्षरपुरुषोत्तमम्।
पुनरागममन्त्रेण प्रस्थापयेन्निजात्मनि॥ ७२ ॥

इस प्रकार भक्तिभाव से पूजा करके पुनरागमन

मंत्र के द्वारा अक्षरपुरुषोत्तम महाराज को अपनी आत्मा में स्थापित करें। (72)

पुनरागमनमन्त्रश्चैवंविधः -

भक्त्यैव दिव्यभावेन पूजा ते समनुष्ठिता।
गच्छाऽथ त्वं मदात्मानम् अक्षरपुरुषोत्तम॥ ७३ ॥

पुनरागमन मंत्र इस प्रकार है –

भक्त्यैव दिव्यभावेन पूजा ते समनुष्ठिता।
गच्छाथ त्वं मदात्मानम् अक्षरपुरुषोत्तम॥[4]

(73)

ततः सत्सङ्गदार्ढ्याय शास्त्रं पठ्यं च प्रत्यहम्।
आदेशाश्चोपदेशाश्च यत्र सन्ति हरेर्गुरोः॥ ७४ ॥

---

4. मंत्र का उच्चारण उपर्युक्त प्रकार से ही करें। मंत्र का अर्थ इस प्रकार है: हे अक्षरपुरुषोत्तम महाराज! मैंने भक्ति और दिव्यभाव से आपकी पूजा संपन्न की है। अब आप मेरी आत्मा में बिराजिए।

तत्पश्चात् सत्संग की दृढता के लिए जिस शास्त्र में श्रीहरि तथा गुरु के आदेश और उपदेश समाविष्ट हों, उस शास्त्र का नित्य पठन करें। (74)

तदनु प्रणमेद् भक्तान् आदरान्नम्रभावतः।
एवं पूजां समाप्यैव कुर्यात् स्वव्यावहारिकम्॥ ७५॥

तत्पश्चात् आदर और नम्रभाव से भक्तों को प्रणाम करें। इस प्रकार पूजा करने के बाद ही अपना व्यावहारिक कार्य करें। (75)

भोज्यं नैव न पेयं वा विना पूजां जलादिकम्।
प्रवासगमने चाऽपि पूजां नैव परित्यजेत्॥ ७६॥

पूजा किए बिना भोजन न करें और जल आदि भी न पीएँ। यात्रा के दौरान भी पूजा का त्याग न करें। (76)

वार्धक्येन च रोगाद्यैरन्याऽऽपद्धेतुना तथा।
पूजार्थम् असमर्थश्चेत् तदाऽन्यैः कारयेत् स ताम्॥ ७७॥

वृद्धावस्था, रोगादि तथा अन्य आपत्ति के कारण स्वयं पूजा करने में असमर्थ हों तो अन्य के द्वारा वह पूजा कराएँ। (77)

स्वीयपूजा स्वतन्त्रा तु सर्वै रक्ष्या गृहे पृथक्।
जन्मनो दिवसादेव पूजा ग्राह्या स्वसंततेः॥ ७८ ॥

घर में प्रत्येक सत्संगी अपनी स्वतंत्र पूजा रखे। पुत्र या पुत्री का जन्म हो उसी दिन से अपनी संतान के लिए पूजा-सामग्री ले लें। (78)

भक्तिप्रार्थनसत्सङ्गहेतुना प्रतिवासरम्।
सुन्दरं मन्दिरं स्थाप्यं सर्वैः सत्सङ्गिभिर्गृहे॥ ७९ ॥
प्रस्थाप्यौ विधिवत् तस्मिन्नक्षरपुरुषोत्तमौ।
गुरवश्च गुणातीता भक्त्या परम्परागताः॥ ८० ॥

नित्य भक्ति, प्रार्थना तथा सत्संग के लिए सभी सत्संगी घर में सुंदर मंदिर स्थापित करें। उसमें भक्तिभाव से विधिवत् अक्षर-पुरुषोत्तम तथा

परंपरा में स्थित गुणातीत गुरुओं का प्रस्थापन करें। (79-80)

प्रातः प्रतिदिनं सायं सर्वैः सत्सङ्गिभिर्जनैः।
आरार्तिक्यं विधातव्यं सस्तुति गृहमन्दिरे॥ ८१॥

सभी सत्संगी जन प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल घरमंदिर में आरती तथा स्तुतिगान करें। (81)

उच्चैः स्वैर्जय स्वामि-नारायणेति भक्तितः।
सतालिवादनं गेयं स्थिरेण चेतसा तदा॥ ८२॥

आरती के समय स्थिर चित्त से भक्तिपूर्वक ताली बजाते हुए उच्च स्वर से ‘जय स्वामिनारायण जय अक्षरपुरुषोत्तम...’ इस प्रकार आरती का गान करें। (82)

यैव रसवती पक्वा मन्दिरे तां निवेदयेत्।
उच्चार्य प्रार्थनं भक्त्या ततः प्रसादितं जमेत्॥ ८३॥

जो भोजन बनाया हो उसे घरमंदिर में निवेदित

करें। तत्पश्चात् भक्तिभाव से प्रार्थना बोलकर प्रासादिक भोजन ग्रहण करें। (83)

हरयेऽनर्प्य न ग्राह्यम् अन्नफलजलादिकम्।
शुद्धौ शङ्कितमन्नादि नाऽद्यान्नेशे निवेदयेत्॥ ८४॥

भगवान को अर्पण किए बिना अन्न, फल, जल आदि ग्रहण न करें। जिसकी शुद्धि के विषय में शंका हो वैसा अन्न आदि भगवान को निवेदित न करें और न खाएँ। (84)

कीर्तनं वा जपं कुर्यात् स्मृत्यादि वा यथारुचि।
गृहमन्दिरमास्थाय भावतः स्थिरचेतसा॥ ८५॥

घरमंदिर में बैठकर स्थिर चित्त से भावपूर्वक कीर्तन, जप या स्मृति इत्यादि अपनी रुचि के अनुसार करें। (85)

संभूय प्रत्यहं कार्या गृहसभा गृहस्थितैः।
कर्तव्यं भजनं गोष्ठिः शास्त्रपाठादि तत्र च॥ ८६॥

घर के सदस्य एकत्र होकर प्रतिदिन घरसभा करें और उसमें भजन, गोष्ठी, शास्त्रों का पठन इत्यादि करें। (86)

शुद्धोपासनभक्तिं हि पोषयितुं च रक्षितुम्।
भक्तिं मन्दिरनिर्माणरूपां प्रावर्तयद्धरिः॥ ८७॥
तथैवाऽऽज्ञापयामास सेवार्थं हरिणा सह।
तस्य चोत्तमभक्तस्य तस्येवैवाऽक्षरस्य च॥ ८८॥

श्रीहरि ने शुद्ध उपासना-भक्ति की पुष्टि तथा रक्षा के लिए मंदिर-निर्माणरूप भक्ति का प्रवर्तन किया है एवं भगवान के साथ उनके उत्तम भक्त अक्षरब्रह्म की भगवान के समान ही सेवा करने की आज्ञा दी है। (87-88)

वर्तत उत्तमो भक्तो ब्रह्म भगवतोऽक्षरम्।
नित्यं मायापरं नित्यं हरिसेवारतं यतः॥ ८९॥

अक्षरब्रह्म भगवान के उत्तम भक्त हैं। क्योंकि वे

नित्य माया से परे हैं और नित्य भगवान की सेवा में रत हैं। (89)

मन्दिराणां हि निर्माणं तदाज्ञामनुसृत्य च।
दिव्यानां क्रियते भक्त्या सर्वकल्याणहेतुना॥ ९०॥
पुरुषोत्तममूर्त्या तद्-मध्यखण्डे यथाविधि।
सहितं स्थाप्यते मूर्तिरक्षरस्याऽपि ब्रह्मणः॥ ९१॥

(परब्रह्म के साथ अक्षरब्रह्म की समान सेवा करने की) उस आज्ञा के अनुसार सभी का कल्याण करने हेतु दिव्य मंदिरों का निर्माण भक्तिपूर्वक किया जाता है, और उनके मध्यखंड में पुरुषोत्तम भगवान की मूर्ति के साथ अक्षरब्रह्म की मूर्ति भी विधिवत् स्थापित की जाती है। (90-91)

एवमेव गृहाद्येषु कृतेषु मन्दिरेष्वपि।
मध्ये प्रस्थाप्यते नित्यं साऽक्षरः पुरुषोत्तमः॥ ९२॥

उसी प्रकार घर आदि स्थानों में निर्मित मंदिरों में

भी मध्य में सदा अक्षरब्रह्म सहित पुरुषोत्तम भगवान को स्थापित किया जाता है। (92)

प्रातः सायं यथाकालं सर्वसत्सङ्गिभिर्जनैः।
निकटं मन्दिरं गम्यं भक्त्या दर्शाय प्रत्यहम्॥ ९३॥

सभी सत्संगी प्रात:काल, संध्या समय अथवा अपने अनुकूल समय पर प्रतिदिन भक्तिपूर्वक समीपवर्ती मंदिर में दर्शन करने जाएँ। (93)

यथा स्वधर्मरक्षा स्यात् तथैव वस्त्रधारणम्।
सत्सङ्गिनरनारीभिः करणीयं हि सर्वदा॥ ९४॥

सभी सत्संगी नर-नारी सदैव जिस प्रकार अपने धर्म की रक्षा हो, उसी प्रकार वस्त्र धारण करें। (94)

सत्सङ्गदृढतार्थं हि सभार्थमन्तिके स्थितम्।
गन्तव्यं प्रतिसप्ताहं मन्दिरं वाऽपि मण्डलम्॥ ९५॥

सत्संग की दृढता के लिए हर सप्ताह समीपवर्ती मंदिर या मंडल में सत्संग-सभा के लिए जाएँ। (95)

स्वामिनारायणः साक्षादक्षराधिपतिर्हरिः।
परमात्मा परब्रह्म भगवान् पुरुषोत्तमः॥ ९६॥

अक्षराधिपति भगवान श्रीस्वामिनारायण साक्षात् परमात्मा परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीहरि हैं। (96)

स एकः परमोपास्य इष्टदेवो हि नः सदा।
तस्यैव सर्वदा भक्तिः कर्तव्याऽनन्यभावतः॥ ९७॥

एकमात्र वे ही सदैव हमारे परम उपास्य इष्टदेव हैं। उनकी ही अनन्य भाव से सदा भक्ति करें। (97)

साक्षाद् ब्रह्माऽक्षरं स्वामी गुणातीतः सनातनम्।
तस्य परम्पराऽद्याऽपि ब्रह्माऽक्षरस्य राजते॥ ९८॥

गुणातीतानंद स्वामी साक्षात् सनातन अक्षरब्रह्म हैं। उस अक्षरब्रह्म की परंपरा आज भी विद्यमान है। (98)

गुणातीतसमारब्ध - परम्पराप्रतिष्ठितः।
प्रकटाऽक्षरब्रह्मैकः संप्रदायेऽस्ति नो गुरुः॥ ९९॥

संप्रदाय में गुणातीतानंद स्वामी से प्रारंभ हुई गुरुपरंपरा में स्थित प्रकट अक्षरब्रह्म ही एकमात्र हमारे गुरु हैं। (99)

एक एवेष्टदेवो नः एक एव गुरुस्तथा।
एकश्चैवाऽपि सिद्धान्त एवं नः एकता सदा॥ १००॥

हमारे इष्टदेव एक ही हैं, गुरु एक ही हैं और सिद्धांत भी एक ही है। इस प्रकार हमारी सदैव एकता है। (100)

सिद्धान्तं सुविजानीयाद् अक्षरपुरुषोत्तमम्।
ब्रह्मविद्यात्मकं दिव्यं वैदिकं च सनातनम्॥ १०१॥

ब्रह्मविद्यारूप, वैदिक, सनातन एवं दिव्य अक्षरपुरुषोत्तम सिद्धांत को समझें। (101)

जीवस्तथेश्वरश्चैव माया ब्रह्माऽक्षरं तथा।
परब्रह्मेति तत्त्वानि भिन्नानि पञ्च सर्वदा॥ १०२॥

नित्यान्यथ च सत्यानि विज्ञेयानि मुमुक्षुभिः।
स्वामिनारायणेनैवं सिद्धान्तितं स्वयं स्फुटम्॥ १०३॥

मुमुक्षु के लिए ज्ञातव्य है कि जीव, ईश्वर, माया, अक्षरब्रह्म तथा परब्रह्म, ये पाँच तत्त्व सर्वदा भिन्न हैं, नित्य हैं और सत्य हैं – इस प्रकार भगवान श्रीस्वामिनारायण ने स्वयं स्पष्ट सिद्धांत प्रतिपादित किया है। (102-103)

तेषु मायापरौ नित्यम् अक्षरपुरुषोत्तमौ।
जीवानामीश्वराणां च मुक्तिस्तद्योगतो भवेत्॥ १०४॥

उसमें अक्षर और पुरुषोत्तम ये दो सदैव माया से परे हैं, और उनके योग से जीवों तथा ईश्वरों की मुक्ति होती है। (104)

परमात्मा परब्रह्म परं ब्रह्माऽक्षरात् सदा।
ब्रह्माऽपि सेवते तं च दासभावेन सर्वदा॥ १०५॥

परमात्मा परब्रह्म सदैव अक्षरब्रह्म से परे हैं और

अक्षरब्रह्म भी दासभाव से सर्वदा उनकी सेवा करते हैं। (105)

सर्वकर्ता च साकारः सर्वोपरि सदा हरिः।
मुमुक्षूणां विमोक्षाय प्रकटो वर्तते सदा॥ १०६॥

भगवान सदैव सर्वकर्ता, साकार, सर्वोपरि हैं और मुमुक्षुओं की मुक्ति के लिए सदा प्रकट रहते हैं। (106)

ब्रह्माऽक्षरगुरुद्वारा भगवान् प्रकटः सदा।
सहितः सकलैश्वर्यैः परमाऽऽनन्दमर्पयन्॥ १०७॥

अक्षरब्रह्मस्वरूप गुरु के द्वारा भगवान अपने संपूर्ण ऐश्वर्य के साथ, परमानंद प्रदान करते हुए सदा प्रकट रहते हैं। (107)

प्रीतिः कार्याऽऽत्मबुद्धिश्च ब्रह्माऽक्षरे गुरौ दृढा।
प्रत्यक्षभगवद्भावात् सेव्यो ध्येयः स भक्तितः॥ १०८॥

अक्षरब्रह्म गुरु में दृढ प्रीति एवं आत्मबुद्धि करें,

प्रत्यक्ष भगवान के भाव से भक्तिपूर्वक उनकी सेवा तथा ध्यान करें। (108)

स्वामिनारायणो मन्त्रो दिव्यश्चाऽलौकिकः शुभः।
जप्योऽयं सकलैर्भक्तैर्दत्तोऽयं हरिणा स्वयम्॥ १०९॥
अक्षरं ब्रह्म विज्ञेयं मन्त्रे स्वामीति शब्दतः।
नारायणेति शब्देन तत्परः पुरुषोत्तमः॥ ११०॥

स्वामिनारायण मंत्र दिव्य, अलौकिक एवं शुभ मंत्र है। स्वयं श्रीहरि ने यह मंत्र दिया है। सभी भक्त उसका जप करें। इस मंत्र में 'स्वामि' शब्द को अक्षरब्रह्म का तथा 'नारायण' शब्द को उस अक्षरब्रह्म से परे स्थित परब्रह्म का द्योतक जानें। (109-110)

स्वामिनारायणेनेह सिद्धान्तोऽयं प्रबोधितः।
गुरुभिश्च गुणातीतैर्दिगन्तेऽयं प्रवर्तितः॥ १११॥
यज्ञपुरुषदासेन स्थापितो मूर्तिमत्तया।
गुरुचरित्रग्रन्थेषु पुनरयं दृढायितः॥ ११२॥

प्रमुखगुरुणा योऽयं स्वीयाऽक्षरैः स्थिरीकृतः।
साक्षाद् गुरोः प्रसङ्गेन लभ्यतेऽयं हि जीवने॥ ११३॥
अयमेव स सिद्धान्तो मुक्तिप्रदः सनातनः।
उच्यते दर्शनं दिव्यम् अक्षरपुरुषोत्तमम्॥ ११४॥

यह सिद्धांत भगवान श्रीस्वामिनारायण ने इस लोक में प्रबोधित किया। गुणातीत गुरुओं ने इसे दिगंत में प्रवर्तित किया। शास्त्रीजी महाराज (स्वामी यज्ञपुरुषदासजी) ने इसे मूर्तिमान किया। गुरुओं के जीवनचरित्र-ग्रंथों में इसकी पुनः दृढता कराई गई। गुरुहरि प्रमुखस्वामीजी महाराज ने इसे अपने हस्ताक्षर से लिखकर स्थिर किया।[5] साक्षात् गुरु के प्रसंग से इस सिद्धांत को जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। इस मुक्तिप्रद सनातन सिद्धांत

5. प्रमुखस्वामीजी महाराज द्वारा लिखित यह सिद्धांतपत्र वचनामृत ग्रंथ में आरंभ में मुद्रित किया गया है।

को ही दिव्य 'अक्षरपुरुषोत्तम दर्शन' कहा जाता है। (111-114)

सिद्धान्तं परमं दिव्यम् एतादृशं विचिन्तयन्।
सत्सङ्गं निष्ठया कुर्याद् आनन्दोत्साहपूर्वकम्॥ ११५॥

ऐसे परम दिव्य सिद्धांत का चिंतन करते हुए निष्ठापूर्वक आनंद तथा उत्साह से सत्संग करें। (115)

निजाऽऽत्मानं ब्रह्मरूपं देहत्रयविलक्षणम्।
विभाव्योपासनं कार्यं सदैव परब्रह्मणः॥ ११६॥

तीनों देहों से विलक्षण अपनी आत्मा में ब्रह्मरूप की विभावना कर सदैव परब्रह्म की उपासना करें। (116)

अक्षराधिपतेर्भक्तिं सधर्मामाचरेत् सदा।
धर्मेण रहितां नैव भक्तिं कुर्यात् कदाचन॥ ११७॥

अक्षराधिपति परमात्मा की भक्ति सदैव धर्म

सहित करें। धर्म से रहित भक्ति कदापि न करें। (117)

भक्तिं वा ज्ञानमालम्ब्य नैवाऽधर्मं चरेज्जनः।
अपि पर्वविशेषं वाऽऽलम्ब्य नाऽधर्ममाचरेत्॥ ११८॥

भक्ति तथा ज्ञान का आलंबन लेकर या किसी पर्व(उत्सव) का आलंबन लेकर भी मनुष्य अधर्म का आचरण न करे। (118)

भङ्गासुरादिपानं वा द्यूतादिक्रीडनं तथा।
गालिदानादिकं नैव पर्वस्वपि समाचरेत्॥ ११९॥

त्योहार में भी भाँग, मदिरा आदि का पान करना, जुआ आदि खेलना, अपशब्द बोलना इत्यादि न करें। (119)

परस्माद् ब्रह्मणोऽन्यस्मिन्नक्षराद् ब्रह्मणस्तथा।
प्रीत्यभावो हि वैराग्यम् अङ्गं भक्तेः सहायकम्॥ १२०॥

परब्रह्म तथा अक्षरब्रह्म के अतिरिक्त अन्यत्र

प्रीति न होना ही वैराग्य है। यह भक्ति का सहायक अंग है। (120)

निन्दालज्जाभयाऽऽपद्भ्यः सत्सङ्गं न परित्यजेत्।
स्वामिनारायणं देवं तद्भक्तिं कर्हिचिद् गुरुम्॥ १२१॥

निंदा, लज्जा, भय अथवा अन्य विघ्न आने पर भी सत्संग, श्रीस्वामिनारायण भगवान, उनकी भक्ति एवं गुरु का त्याग कदापि न करें। (121)

सेवा हरेश्च भक्तानां कर्तव्या शुद्धभावतः।
महद्भाग्यं ममास्तीति मत्वा स्वमोक्षहेतुना॥ १२२॥

भगवान एवं भक्तों की सेवा शुद्ध भाव से, अपना बड़ा सौभाग्य मानकर अपने मोक्ष के लिए करें। (122)

नेयो न व्यर्थतां कालः सत्सङ्गं भजनं विना।
आलस्यं च प्रमादादि परित्याज्यं हि सर्वदा॥ १२३॥

सत्संग एवं भजन के बिना व्यर्थ समय व्यतीत न

करें। आलस्य एवं प्रमाद आदि का सदैव परित्याग करें। (123)

कुर्याद्धि भजनं कुर्वन् क्रिया आज्ञाऽनुसारतः।
क्रियाबन्धः क्रियाभारः क्रियामानस्ततो नहि॥ १२४॥

भजन करते हुए क्रिया करें। आज्ञा के अनुसार क्रिया-प्रवृत्ति करें। इससे क्रिया बंधनकारक नहीं होती, क्रिया भाररूप नहीं लगती तथा क्रिया करने पर भी अभिमान नहीं आता। (124)

सेवया कथया स्मृत्या ध्यानेन पठनादिभिः।
सुफलं समयं कुर्याद् भगवत्कीर्तनादिभिः॥ १२५॥

सेवा, कथा, स्मरण, ध्यान, पठन आदि तथा भगवत्कीर्तन इत्यादि से समय को सुफल करें। (125)

स्वदुर्गुणान् अपाकर्तुं संप्राप्तुं सद्गुणांस्तथा।
सत्सङ्गाऽऽश्रयणं कार्यं स्वस्य परममुक्तये॥ १२६॥

सत्संग का आश्रय अपने दुर्गुणों को दूर करने, सद्‌गुणों को प्राप्त करने एवं अपने परम कल्याण के लिए करें। (126)

प्रसन्नतां समावाप्तुं स्वामिनारायणप्रभोः।
गुणातीतगुरूणां च सत्सङ्गमाश्रयेत् सदा॥ १२७॥

भगवान श्रीस्वामिनारायण तथा गुणातीत गुरुओं की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए सदैव सत्संग का आश्रय करें। (127)

अहो इहैव नः प्राप्तावक्षरपुरुषोत्तमौ।
तत्प्राप्तिगौरवान्नित्यं सत्सङ्गानन्दमाप्नुयात्॥ १२८॥

अहो! हमें तो अक्षर एवं पुरुषोत्तम दोनों यहीं मिले हैं। उनकी प्राप्ति के उल्लास से सत्संग के आनंद का सदैव अनुभव करें। (128)

सेवाभक्तिकथाध्यानतपोयात्रादि साधनम्।
मानतो दम्भतो नैव कार्यं नैवेर्ष्यया तथा॥ १२९॥

स्पर्धया द्वेषतो नैव न लौकिकफलेच्छया।
श्रद्धया शुद्धभावेन कार्यं प्रसन्नताधिया॥ १३०॥

सेवा, भक्ति, कथा, ध्यान, तप तथा यात्रा इत्यादि साधन अभिमान, दंभ, ईर्ष्या, स्पर्धा एवं द्वेष से या लौकिक फल की इच्छा से कदापि न करें, परंतु श्रद्धा के साथ, शुद्धभाव से तथा भगवान की प्रसन्नता-प्राप्ति के लिए करें। (129-130)

दृश्यो न मानुषो भावो भगवति तथा गुरौ।
मायापरौ यतो दिव्यावक्षरपुरुषोत्तमौ॥ १३१॥

भगवान एवं गुरु में मनुष्यभाव न देखें। क्योंकि अक्षर और पुरुषोत्तम दोनों माया से परे हैं, दिव्य हैं। (131)

विश्वासः सुदृढीकार्यो भगवति तथा गुरौ।
निर्बलत्वं परित्याज्यं धार्यं धैर्यं हरेर्बलम्॥ १३२॥

भगवान तथा गुरु में विश्वास दृढ करें, निर्बलता

का त्याग करें, धैर्य धारण करें एवं भगवान के बल का आधार रखें। (132)

कार्यं लीलाचरित्राणां स्वामिनारायणप्रभोः।
श्रवणं कथनं पाठो मननं निदिध्यासनम्॥ १३३॥

भगवान श्रीस्वामिनारायण के लीलाचरित्रों का श्रवण, कथन, पठन, मनन एवं निदिध्यासन करें। (133)

प्रसङ्गः परया प्रीत्या ब्रह्माऽक्षरगुरोः सदा।
कर्तव्यो दिव्यभावेन प्रत्यक्षस्य मुमुक्षुभिः॥ १३४॥

मुमुक्षु प्रत्यक्ष अक्षरब्रह्म गुरु का प्रसंग सदैव परम प्रीति एवं दिव्यभाव से करें। (134)

ब्रह्माऽक्षरे गुरौ प्रीतिर्दृढैवाऽस्ति हि साधनम्।
ब्रह्मस्थितेः परिप्राप्तेः साक्षात्कारस्य च प्रभोः॥ १३५॥

अक्षरब्रह्मस्वरूप गुरु में दृढ प्रीति ही ब्राह्मी स्थिति एवं भगवान के साक्षात्कार का साधन

है। (135)

ब्रह्मगुणसमावाप्त्यै परब्रह्माऽनुभूतये।
ब्रह्मगुरोः प्रसङ्गानां कर्तव्यं मननं सदा॥ १३६॥

अक्षरब्रह्म गुरु के गुणों को आत्मसात् करने के लिए तथा परब्रह्म की अनुभूति के लिए अक्षरब्रह्म गुरु के प्रसंगों का सदैव मनन करें। (136)

मनसा कर्मणा वाचा सेव्यो गुरुहरिः सदा।
कर्तव्या तत्र प्रत्यक्षनारायणस्वरूपधीः॥ १३७॥

मन-कर्म-वचन से गुरुहरि का सदैव सेवन करें एवं उनके स्वरूप में प्रत्यक्ष नारायणस्वरूप की भावना करें। (137)

शृणुयान्न वदेन्नाऽपि वार्तां हीनां बलेन च।
बलपूर्णां सदा कुर्याद् वार्तां सत्सङ्गमास्थितः॥ १३८॥

सत्संगी कदापि बलहीन बात न तो सुनें और न ही करें। सदा उत्साहपूर्ण बातें करें। (138)

वार्ता कार्या महिम्नो हि ब्रह्मपरमब्रह्मणोः।
तत्सम्बन्धवतां चाऽपि सस्नेहमादरात् सदा॥ १३९॥

प्रेम एवं आदर से ब्रह्म एवं परब्रह्म की महिमा तथा उनके संबंधयुक्त भक्तों की महिमा की बातें निरंतर करें। (139)

सत्सङ्गिषु सुहृद्भावो दिव्यभावस्तथैव च।
अक्षरब्रह्मभावश्च विधातव्यो मुमुक्षुणा॥ १४०॥

मुमुक्षु, सत्संगीजनों में सुहृद्भाव, दिव्यभाव एवं ब्रह्मभाव रखे। (140)

परमात्मपरब्रह्म - स्वामिनारायणप्रभोः।
ब्रह्माऽक्षरस्वरूपस्य गुणातीतगुरोस्तथा॥ १४१॥
तदर्पितस्य दिव्यस्य सिद्धान्तस्य च सर्वदा।
भक्तानां तच्छ्रितानां च पक्षो ग्राह्यो विवेकतः॥ १४२॥

परमात्मा परब्रह्म भगवान श्रीस्वामिनारायण, अक्षरब्रह्मस्वरूप गुणातीत गुरु, उनके द्वारा प्रदान

किए गए दिव्य सिद्धांत एवं उनके आश्रित भक्तों का सदैव विवेकसहित पक्ष रखें। (141-142)

आज्ञां भगवतो नित्यं ब्रह्मगुरोश्च पालयेत्।
ज्ञात्वा तदनुवृत्तिं च तामेवाऽनुसरेद् दृढम्॥ १४३॥
तदाज्ञां पालयेत् सद्य आलस्यादि विहाय च।
सानन्दोत्साहमाहात्म्यं तत्प्रसादधिया सदा॥ १४४॥

भगवान एवं ब्रह्मस्वरूप गुरु की आज्ञा का सदैव पालन करें। उनकी अनुवृत्ति (रुचि) जानकर उसका दृढता से अनुसरण करें। आलस्य आदि का सर्वथा परित्याग करके उनकी आज्ञा का पालन तुरंत करें। सदा आनंद, उत्साह एवं महिमा के साथ उन्हें प्रसन्न करने के भाव से आज्ञा का पालन करें। (143-144)

अन्तर्दृष्टिश्च कर्तव्या प्रत्यहं स्थिरचेतसा।
किं कर्तुमागतोऽस्मीह किं कुर्वेऽहमिहेति च॥ १४५॥

प्रतिदिन स्थिर चित्त से अंतर्दृष्टि करें कि मैं इस लोक में क्या करने आया हूँ? और क्या कर रहा हूँ? (145)

संप्राप्याऽक्षररूपत्वं भजेयं पुरुषोत्तमम्।
प्रत्यहं चिन्तयेदेवं स्वीयलक्ष्यमतन्द्रितः॥ १४६॥

'अक्षररूप होकर मैं पुरुषोत्तम की भक्ति करूँ' इस प्रकार प्रतिदिन अपने लक्ष्य का चिंतन आलस्यरहित होकर करें। (146)

कर्ताऽयं सर्वहर्ताऽयं सर्वोपरि नियामकः।
प्रत्यक्षमिह लब्धो मे स्वामिनारायणो हरिः॥ १४७॥
अत एवाऽस्मि धन्योऽहं परमभाग्यवानहम्।
कृतार्थश्चैव निःशङ्को निश्चिन्तोऽस्मि सदा सुखी॥ १४८॥

यह स्वामिनारायण भगवान सर्वकर्ताहर्ता हैं, सर्वोपरि हैं, नियामक हैं। वे मुझे यहाँ प्रत्यक्ष मिले हैं। इसीलिए मैं धन्य हूँ, परम भाग्यशाली हूँ,

कृतार्थ हूँ, निःशंक हूँ, निश्चिंत हूँ एवं सदा सुखी हूँ। (147-148)

एवं प्राप्तेर्महिम्नश्च प्रत्यहं परिचिन्तनम्।
प्रभोः प्रसन्नतायाश्च कार्यं स्थिरेण चेतसा॥ १४९॥

इस प्रकार परमात्मा की दिव्य प्राप्ति, उनकी महिमा तथा उनकी प्रसन्नता का चिंतन प्रतिदिन स्थिर चित्त से करें। (149)

देहत्रय-त्र्यवस्थातो ज्ञात्वा भेदं गुणत्रयात्।
स्वात्मनो ब्रह्मणैकत्वं प्रतिदिनं विभावयेत्॥ १५०॥

अपनी आत्मा को तीनों शरीर, तीनों अवस्था एवं तीनों गुणों से भिन्न समझकर, उसकी अक्षरब्रह्म के साथ एकता की विभावना प्रतिदिन करें। (150)

प्रत्यहमनुसन्धेया जगतो नाशशीलता।
स्वात्मनो नित्यता चिन्त्या सच्चिदानन्दरूपता॥ १५१॥

प्रतिदिन संसार की नश्वरता का विचार करें एवं

अपनी आत्मा की नित्यता तथा सच्चिदानंदरूपता का चिंतन करें। (151)

भूतं यच्च भवद्यच्च यदेवाऽग्रे भविष्यति।
सर्वं तन्मे हितायैव स्वामिनारायणेच्छया॥ १५२॥

जो हो गया है, जो हो रहा है और जो कुछ भी आगे होगा, वह सब भगवान श्रीस्वामिनारायण की इच्छा से मेरे हित के लिए ही है, ऐसा समझें। (152)

प्रार्थनं प्रत्यहं कुर्याद् विश्वासभक्तिभावतः।
गुरोर्ब्रह्मस्वरूपस्य स्वामिनारायणप्रभोः॥ १५३॥

भगवान श्रीस्वामिनारायण तथा ब्रह्मस्वरूप गुरु को विश्वास एवं भक्तिभाव से प्रतिदिन प्रार्थना करें। (153)

मानेर्ष्याकामक्रोधादि-दोषाऽऽवेगो भवेत् तदा।
अक्षरमहमित्यादि शान्तमना विचिन्तयेत्॥ १५४॥

मान, ईर्ष्या, काम, क्रोध इत्यादि दोषों के आवेग

के समय 'मैं अक्षर हूँ, पुरुषोत्तम का दास हूँ' इस प्रकार शांत मन से चिंतन करें। (154)

मया सह सदैवाऽस्ति सर्वदोषनिवारकः।
स्वामिनारायणः साक्षाद् एवं बलं च धारयेत्॥ १५५॥

और सर्व दोषों का निवारण करनेवाले साक्षात् भगवान श्रीस्वामिनारायण मेरे साथ हैं, इस प्रकार भगवद्बल को धारण करें। (155)

स्वधर्मं पालयेन्नित्यं परधर्मं परित्यजेत्।
स्वधर्मो भगवद्गुर्वोराज्ञायाः परिपालनम्॥ १५६॥
तदाज्ञां यत् परित्यज्य क्रियते स्वमनोधृतम्।
परधर्मः स विज्ञेयो विवेकिभिर्मुमुक्षुभिः॥ १५७॥

स्वधर्म का सदैव पालन करें। परधर्म का त्याग करें। भगवान एवं गुरु की आज्ञा का पालन ही स्वधर्म है; उनकी आज्ञा का उल्लंघन करके मनमाना आचरण किया जाए तो उसे विवेकी मुमुक्षु

परधर्म समझें। (156-157)

सत्सङ्गनियमाद् यद्धि विरुद्धं धर्मलोपकम्।
फलदमपि नाऽऽचर्यं भवेद् यद् भक्तिबाधकम्॥ १५८॥

जो कर्म फलदायी होने पर भी भक्ति में बाधक हो, सत्संग के नियम के विरुद्ध हो तथा जिसके आचरण से धर्म का लोप होता हो, ऐसे कर्म का आचरण न करें। (158)

आदरेण प्रणामैश्च मधुरवचनादिभिः।
यथोचितं हि सम्मान्या वृद्धा ज्ञानवयोगुणैः॥ १५९॥

आयु, ज्ञान या गुणों में जो वरिष्ठ हों, उन्हें सादर प्रणाम कर उनका मधुर वचन आदि से यथोचित सम्मान करें। (159)

सदैवाऽऽदरणीया हि विद्वद्वरिष्ठशिक्षकाः।
यथाशक्ति च सत्कार्याः साधुवादादिकर्मणा॥ १६०॥

विद्वानों, वरिष्ठों एवं अध्यापकों को सदा आदर

प्रदान करें। उत्कृष्ट वचन आदि क्रियाओं के द्वारा यथाशक्ति उनका सत्कार करें। (160)

जनसंबोधनं कुर्याद् यथाकार्यगुणादिकम्।
संवर्धयेत् तदुत्साहं यथाशक्ति सुकर्मसु॥ १६१ ॥

व्यक्ति के गुण एवं कार्य आदि के अनुसार उसे संबोधित करें। यथाशक्ति उसे शुभ कार्यों में प्रोत्साहित करें। (161)

सत्यां वदेद् हितां चैव वदेद् वाणीं प्रियां तथा।
मिथ्याऽऽरोप्योऽपवादो न कस्मिंश्चित् कर्हिचिज्जने॥ १६२ ॥

सत्य, हितकारी एवं प्रिय वाणी बोलें। किसी मनुष्य पर मिथ्या अपवाद का आरोपण कदापि न करें। (162)

न वदेत् कुत्सितां वाचम् अपशब्दकलङ्किताम्।
श्रोतृदुःखकरीं निन्द्यां कठोरां द्वेषगर्भिणीम्॥ १६३ ॥

अपशब्दों से युक्त, सुननेवाले को दुःखदायक,

निंदनीय, कठोर एवं द्वेषपूर्ण कुत्सित वाणी न बोलें। (163)

असत्यं न वदेत् क्वापि वदेत् सत्यं हिताऽऽवहम्।
सत्यमपि वदेन्नैव यत् स्यादन्याऽहिताऽऽवहम्॥ १६४॥

कदापि असत्य न बोलें। हितकारी सत्य बोलें। अन्य का अहित हो, ऐसा सत्य भी न बोलें। (164)

अन्याऽवगुणदोषादिवार्तां कदाऽपि नोच्चरेत्।
तथाकृते त्वशान्तिः स्याद् अप्रीतिश्च हरेर्गुरोः॥ १६५॥

किसी के अवगुण या दोषों की बात कभी न करें। इससे अशांति होती है तथा भगवान और गुरु की अप्रसन्नता होती है। (165)

अत्यन्ताऽऽवश्यके नूनं परिशुद्धेन भावतः।
सत्यप्रोक्तौ न दोषः स्याद् अधिकारवतां पुरः॥ १६६॥

अत्यंत आवश्यकता होने पर अधिकृत व्यक्ति को परिशुद्ध भावना से सत्य कहने में दोष नहीं है। (166)

आचारो वा विचारो वा तादृक् कार्यो न कर्हिचित्।
अन्येषाम् अहितं दुःखं येन स्यात् क्लेशवर्धनम्॥ १६७॥

जिनसे अन्य का अहित हो, उसे दुःख हो, या कलह बढ़े, ऐसा आचरण या विचार कदापि न करें। (167)

सुहृद्भावेन भक्तानां शुभगुणगणान् स्मरेत्।
न ग्राह्योऽवगुणस्तेषां द्रोहः कार्यो न सर्वथा॥ १६८॥

सुहृदयभाव रखकर भक्तों के शुभ गुणों का स्मरण करें। उनका अवगुण न देखें और न ही किसी भी प्रकार से उनका द्रोह करें। (168)

सुखे नोच्छृङ्खलो भूयाद् दुःखे नोद्वेगमाप्नुयात्।
स्वामिनारायणेच्छातः सर्वं प्रवर्तते यतः॥ १६९॥

सुख में उन्माद एवं दुःख में उद्वेग से दूर रहें। क्योंकि सब कुछ स्वामिनारायण भगवान की इच्छा से होता है। (169)

विवादः कलहो वाऽपि नैव कार्यः कदाचन।
वर्तितव्यं विवेकेन रक्ष्या शान्तिश्च सर्वदा॥ १७०॥

किसी के साथ विवाद या कलह कदापि न करें। सदैव विवेकयुक्त आचरण करें तथा शांति रखें।(170)

वचने वर्तने क्वापि विचारे लेखने तथा।
कठोरतां भजेन्नैव जनः कोऽपि कदाचन॥ १७१॥

कोई भी मनुष्य अपने वचन, आचरण, विचार तथा लेखन में कदापि कठोरता न रखे। (171)

सेवां मातुः पितुः कुर्याद् गृही सत्सङ्गमाश्रितः।
प्रतिदिनं नमस्कारं तत्पादेषु निवेदयेत्॥ १७२॥

गृहस्थ सत्संगी माता-पिता की सेवा करे। प्रतिदिन उनके चरणों में नमस्कार करे। (172)

श्वशुरः पितृवत् सेव्यो वध्वा श्वश्रूश्च मातृवत्।
स्वपुत्रीवत् स्नुषा पाल्या श्वश्र्वाऽपि श्वशुरेण च॥ १७३॥

वधू अपने ससुर को पितातुल्य एवं सास को

मातातुल्य मानकर सेवा करे। सास-ससुर भी पुत्रवधू का अपनी पुत्री के समान पालन करें। (173)

संपाल्याः पुत्रपुत्र्यश्च सत्सङ्गशिक्षणादिना।
अन्ये सम्बन्धिनः सेव्या यथाशक्ति च भावतः॥ १७४॥

गृहस्थ भक्त अपने पुत्र-पुत्रियों का सत्संग, शिक्षण आदि से भलीभाँति पोषण करें। अन्य संबंधियों की भावपूर्वक यथाशक्ति सेवा करें।(174)

गृहे हि मधुरां वाणीं वदेद् वाचं त्यजेत् कटुम्।
कमपि पीडितं नैव प्रकुर्याद् मलिनाऽऽशयात्॥ १७५॥

घर में मधुर वाणी बोलें। कर्कश वाणी का त्याग करें तथा मलिन आशय से किसी को पीड़ा न पहुँचाएँ। (175)

मिलित्वा भोजनं कार्यं गृहस्थैः स्वगृहे मुदा।
अतिथिर्हि यथाशक्ति संभाव्य आगतो गृहम्॥ १७६॥

गृहस्थ अपने घर में एकत्र होकर आनंदपूर्वक

भोजन करें एवं घर पर पधारे अतिथियों की यथाशक्ति संभावना (सेवा-सत्कार) करें। (176)

मरणादिप्रसङ्गेषु कथाभजनकीर्तनम्।
कार्यं विशेषतः स्मार्यो ह्यक्षरपुरुषोत्तमः॥ १७७॥

मृत्यु आदि प्रसंगों में विशेष भजन-कीर्तन करें, कथा करें, अक्षरपुरुषोत्तम महाराज का स्मरण करें। (177)

पुत्रीपुत्रात्मिका स्वस्य संस्कार्या संततिः सदा।
सत्सङ्गदिव्यसिद्धान्तैः सदाचारैश्च सद्गुणैः॥ १७८॥

पुत्री या पुत्र के रूप में प्राप्त अपनी संतानों को सत्संग के दिव्य सिद्धांतों, शुभ आचरणों एवं सद्गुणों के द्वारा संस्कार प्रदान करें। (178)

सत्सङ्गशास्त्रपाठाद्यैर्गर्भस्थामेव संततिम्।
संस्कुर्यात् पूरयेन् निष्ठाम् अक्षरपुरुषोत्तमे॥ १७९॥

संतान जब गर्भ में हो, तभी से उसे सत्संग

संबंधी शास्त्रों के पठन आदि द्वारा संस्कार दें एवं अक्षरपुरुषोत्तम महाराज में निष्ठा कराएँ। (179)

कुदृष्ट्या पुरुषैर्नैव स्त्रियो दृश्याः कदाचन।
एवमेव कुदृष्ट्या च स्त्रीभिर्दृश्या न पूरुषाः॥ १८०॥

पुरुष कदापि स्त्रियों को कुदृष्टि से न देखें। उसी प्रकार स्त्रियाँ भी पुरुषों को कुदृष्टि से न देखें। (180)

स्वीयपत्नीतराभिस्तु रहसि वसनं सह।
आपत्कालं विना क्वापि न कुर्युर्गृहिणो नराः॥ १८१॥

गृहस्थाश्रमी पुरुष अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के साथ आपत्काल के बिना कहीं भी एकांत में न रहें। (181)

तथैव नहि नार्योऽपि तिष्ठेयुः स्वपतीतरैः।
पुरुषैः साकमेकान्ते ह्यापत्तिसमयं विना॥ १८२॥

उसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों के साथ आपत्काल के बिना एकांत में

न रहें। (182)

नरः समीपसम्बन्ध-हीनां स्त्रियं स्पृशेन्नहि।
नैव स्पृशेत् तथा नारी तादृशं पुरुषान्तरम्॥ १८३॥

पुरुष अपनी निकटतम संबंधिनी स्त्री के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों का स्पर्श न करें, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने निकटतम संबंधी के अतिरिक्त अन्य पुरुषों का स्पर्श न करें। (183)

आपत्कालेऽन्यरक्षार्थं स्पर्शे दोषो न विद्यते।
अन्यथा नियमाः पाल्या अनापत्तौ तु सर्वदा॥ १८४॥

आपत्काल के समय अन्य की रक्षा के लिए स्पर्श करने में दोष नहीं है। परंतु आपत्काल न होने पर तो नियमों का सदैव पालन करें। (184)

अश्लीलं यत्र दृश्यं स्याद् धर्मसंस्कारनाशकम्।
नाटकचलचित्रादि तन्न पश्येत् कदाचन॥ १८५॥

धर्म एवं संस्कारों का नाश करनेवाले अश्लील

दृश्य जिसमें दिखाई देते हों, ऐसे नाटक या चलचित्र आदि कदापि न देखें। (185)

मनुष्यो व्यसनी यः स्याद् निर्लज्जो व्यभिचारवान्।
तस्य सङ्गो न कर्तव्यः सत्सङ्गमाश्रितैर्जनैः ॥ १८६ ॥

सत्संगीजन व्यसनी, निर्लज्ज तथा व्यभिचारी मनुष्य की संगत न करें। (186)

सङ्गश्चारित्र्यहीनायाः करणीयो नहि स्त्रियाः।
स्त्रीभिः स्वधर्मरक्षार्थं पाल्याश्च नियमा दृढम्॥ १८७ ॥

स्त्रियाँ अपने धर्म की रक्षा के लिए चरित्रहीन स्त्री का संग न करें तथा दृढतापूर्वक नियमों का पालन करें। (187)

न तादृक्छृणुयाद् वाचं गीतं ग्रन्थं पठेन्न च।
पश्येन्न तादृशं दृश्यं यस्मात् कामविवर्धनम्॥ १८८ ॥

कामवासना को उत्तेजित करनेवाली बातें अथवा गीत न सुनें, ऐसी पुस्तकें न पढ़ें और न ही ऐसे

दृश्यों को देखें। (188)

धनद्रव्यधरादीनां सदाऽऽदानप्रदानयोः।
नियमा लेखसाक्ष्यादेः पालनीया अवश्यतः॥ १८९॥

धन, द्रव्य तथा भूमि आदि के लेन-देन में सदैव लिखित प्रमाण, साक्षी की उपस्थिति इत्यादि नियमों का पालन अवश्य करें। (189)

प्रसङ्गे व्यवहारस्य सम्बन्धिभिरपि स्वकैः।
लेखादिनियमाः पाल्याः सकलैराश्रितैर्जनैः॥ १९०॥

सभी आश्रित जन अपने संबंधियों के साथ होनेवाले व्यावहारिक प्रसंग में भी लिखित प्रमाण इत्यादि सभी नियमों का पालन करें। (190)

न कार्यो व्यवहारश्च दुष्टैर्जनैः सह क्वचित्।
दीनजनेषु भाव्यं च सत्सङ्गिभिर्दयाऽन्वितैः॥ १९१॥

सत्संगी जन दुष्टों के साथ कदापि व्यवहार न करें तथा दीनजनों के प्रति दयावान बनें। (191)

लौकिकं त्वविचार्यैव सहसा कर्म नाऽऽचरेत्।
फलादिकं विचार्यैव विवेकेन तद् आचरेत्॥ १९२॥

लौकिक कार्य, बिना विचार किए तत्काल न करें परंतु उसके परिणाम आदि पर विचार करके विवेकपूर्वक करें। (192)

लुञ्चा कदापि न ग्राह्या कैश्चिदपि जनैरिह।
नैव कार्यो व्ययो व्यर्थः कार्यः स्वाऽऽयाऽनुसारतः॥ १९३॥

कोई भी मनुष्य कभी रिश्वत न लें। धन का व्यर्थ व्यय न करें। अपनी आय के अनुसार धन का व्यय करें। (193)

कर्तव्यं लेखनं सम्यक् स्वस्याऽऽयस्य व्ययस्य च।
नियमाननुसृत्यैव प्रशासनकृतान् सदा॥ १९४॥

प्रशासन के नियमों का अनुसरण करके सदैव अपनी आय एवं व्यय का ब्यौरा व्यवस्थित रखें। (194)

स्वाऽऽयाद्धि दशमो भागो विंशोऽथवा स्वशक्तितः।
अर्प्यः सेवाप्रसादार्थं स्वामिनारायणप्रभोः॥ १९५॥

अपनी आय में से दसवाँ या बीसवाँ भाग यथाशक्ति श्रीस्वामिनारायण भगवान की सेवा-प्रसन्नता के लिए अर्पण करें। (195)

स्वोपयोगाऽनुसारेण प्रकुर्यात् सङ्ग्रहं गृही।
अन्नद्रव्यधनादीनां कालशक्त्यनुसारतः॥ १९६॥

गृहस्थ अपने उपयोग के अनुसार एवं समय-शक्ति के अनुसार अनाज, द्रव्य या धन आदि का संग्रह करें। (196)

अन्नफलादिभिश्चैव यथाशक्ति जलादिभिः।
पालिताः पशुपक्ष्याद्याः संभाव्या हि यथोचितम्॥ १९७॥

पालतु पशु-पक्षी आदि की अन्न, फल, जल इत्यादि से यथाशक्ति उचित देखभाल करें। (197)

धनद्रव्यधरादीनां प्रदानाऽऽदानयोः पुनः।
विश्वासहननं नैव कार्यं न कपटं तथा॥ १९८॥

धन, द्रव्य या भूमि आदि के लेन-देन में विश्वासघात और कपट न करें। (198)

प्रदातुं कर्मकारिभ्यः प्रतिज्ञातं धनादिकम्।
यथावाचं प्रदेयं तद् नोनं देयं कदाचन॥ १९९॥

कर्मचारियों को जितना धन आदि देने का वचन दिया हो, उस वचन के अनुसार धन आदि दें; परंतु उससे कम कदापि न दें। (199)

नैव विश्वासघातं हि कुर्यात् सत्सङ्गमाश्रितः।
पालयेद् वचनं दत्तं प्रतिज्ञातं न लङ्घयेत्॥ २००॥

सत्संगी कदापि विश्वासघात न करें। दिए हुए वचन का पालन करें। प्रतिज्ञा का उल्लंघन न करें। (200)

प्रशास्ता पालयेद् धर्मान् नियता ये सुशासने।
लोकानां भरणं पुष्टिं कुर्यात् संस्काररक्षणम्॥ २०१॥

स्वास्थ्यशिक्षणसंरक्षा-विद्युदन्नजलादिकैः।
सुव्यवस्था विधातव्या सर्वाऽभ्युदयहेतुना॥ २०२॥

प्रशासक, सुशासन के लिए आवश्यक धर्मों का पालन करें। लोगों का भरण-पोषण करें। संस्कारों की रक्षा करें। सभी के अभ्युदय के लिए स्वास्थ्य, शिक्षण, संरक्षण, बिजली, अनाज, जल आदि द्वारा यथोचित व्यवस्था करें। (201-202)

गुणसामर्थ्यरुच्यादि विदित्वैव जनस्य तु।
तदुचितेषु कार्येषु योजनीयो विचार्य सः॥ २०३॥

मनुष्य के गुण, सामर्थ्य, रुचि आदि को जानकर, विचार करके उसके लिए उचित कार्यों में उसे प्रेरित करें। (203)

शक्या भगवतो यत्र भक्तिः स्वधर्मपालनम्।
तस्मिन् देशे निवासो हि करणीयः सुखेन च॥ २०४॥

जिस देश में भगवान की भक्ति हो सके

तथा अपने धर्म का पालन हो सके, ऐसे देश में सुखपूर्वक निवास करें। (204)

विद्याधनादिकं प्राप्तुं देशान्तरं गतेऽपि च।
सत्सङ्गमादरात् तत्र कुर्यान्नियमपालनम्॥ २०५॥

विद्या, धन आदि की प्राप्ति के लिए देशांतर में जाए तो वहाँ भी आदरपूर्वक सत्संग करें और नियमों का पालन करें। (205)

यद्देशे हि स्ववासः स्यात् तद्देशनियमाश्च ये।
सर्वथा पालनीयास्ते तत्प्रशासनसंमताः॥ २०६॥

जिस देश में स्वयं रहते हों, उस देश के प्रशासनिक नियमों का सर्वथा पालन करें। (206)

संजाते देशकालादेर्वैपरीत्ये तु धैर्यतः।
अन्तर्भजेत सानन्दम् अक्षरपुरुषोत्तमम्॥ २०७॥

जब देशकालादि के कारण परिस्थिति विपरीत हो जाए, तब धैर्यपूर्वक अक्षरपुरुषोत्तम महाराज का

आनंदसहित हृदय में भजन करें। (207)

आपत्काले तु सम्प्राप्ते स्वीयवासस्थले तदा।
तं देशं हि परित्यज्य स्थेयं देशान्तरे सुखम्॥ २०८॥

अपने निवासक्षेत्र में आपत्काल आ पड़ने पर उस क्षेत्र का त्याग करके, अन्य क्षेत्र में सुखपूर्वक निवास करें। (208)

कार्यं बालैश्च बालाभिर्बाल्याद् विद्याऽभिप्रापणम्।
दुराचारः कुसङ्गश्च त्याज्यानि व्यसनानि च॥ २०९॥

बालक और बालिकाएँ शिशुकाल से ही विद्या प्राप्त करें। दुराचार, कुसंग और व्यसनों का त्याग करें। (209)

उत्साहाद् आदरात् कुर्यात् स्वाऽभ्यासं स्थिरचेतसा।
व्यर्थतां न नयेत्कालं विद्यार्थी व्यर्थकर्मसु॥ २१०॥

विद्यार्थी अपना अध्ययन स्थिर चित्त, उत्साह और आदर से करें। व्यर्थ कार्यों में समय का व्यय

न करें। (210)

बाल्यादेव दृढीकुर्यात् सेवाविनम्रतादिकम्।
निर्बलतां भयं चाऽपि नैव गच्छेत् कदाचन॥ २११॥

बाल्यावस्था से ही सेवा, विनम्रता आदि सद्गुणों को दृढ करें। निर्बलता तथा भय के अधीन कभी न हों। (211)

बाल्यादेव हि सत्सङ्गं कुर्याद् भक्तिं च प्रार्थनाम्।
कार्या प्रतिदिनं पूजा पित्रोः पञ्चाङ्गवन्दना॥ २१२॥

बाल्यावस्था से ही सत्संग, भक्ति और प्रार्थना करें। प्रतिदिन पूजा करें और माता-पिता को पंचांग प्रणाम करें। (212)

विशेषसंयमः पाल्यः कौमार्ये यौवने तथा।
अयोग्यस्पर्शदृश्याद्यास्त्याज्याः शक्तिविनाशकाः॥ २१३॥

कुमार तथा युवावस्था में विशेष संयम रखें। शक्ति का नाश करनेवाले अयोग्य स्पर्श, दृश्य आदि

का त्याग करें। (213)

सत्फलोन्नायकं कुर्याद् उचितमेव साहसम्।
न कुर्यात् केवलं यद्धि स्वमनोलोकरञ्जकम्॥ २१४॥

ऐसा ही साहस करें जो उत्कृष्टफलदायक, उन्नतिकारक तथा उचित हो। जो केवल अपने मन का और लोगों का रंजन करे वैसा साहस न करें। (214)

नियतोद्यमकर्तव्ये नाऽऽलस्यम् आप्नुयात् क्वचित्।
श्रद्धां प्रीतिं हरौ कुर्यात् पूजां सत्सङ्गमन्वहम्॥ २१५॥

अवश्य करने योग्य उद्यम में कदापि आलस्य न करें। भगवान में श्रद्धा और प्रीति करें। प्रतिदिन पूजा और सत्संग करें। (215)

सङ्गोऽत्र बलवाँल्लोके यथासङ्गं हि जीवनम्।
सतां सङ्गम् अतः कुर्यात् कुसङ्गं सर्वथा त्यजेत्॥ २१६॥

इस लोक में संग बलवान है। जैसा संग होता

है वैसा जीवन बनता है। इसलिए उत्तम मनुष्यों का संग करें। कुसंग का सर्वथा त्याग करें। (216)

कामाऽऽसक्तो भवेद् यो हि कृतघ्नो लोकवञ्चकः।
पाखण्डी कपटी यश्च तस्य सङ्गं परित्यजेत्॥ २१७॥

जो मनुष्य कामासक्त, कृतघ्नी, लोगों को छलनेवाला, पाखंडी तथा कपटी हो, उसके संग का परित्याग करें। (217)

हरेस्तदवताराणां खण्डनं विदधाति यः।
उपास्तेः खण्डनं यश्च कुरुते परमात्मनः॥ २१८॥
साकृतिकं परब्रह्म मनुते यो निराकृति।
तस्य सङ्गो न कर्तव्यस्तादृग्ग्रन्थान् पठेन्नहि॥ २१९॥

जो मनुष्य भगवान तथा उनके अवतारों का खंडन करता हो, परमात्मा की उपासना का खंडन करता हो और साकार भगवान को निराकार मानता हो उसका संग न करें। ऐसे ग्रंथ भी न पढ़ें।

(218-219)

खण्डनं मन्दिराणां यो मूर्तीनां कुरुते हरेः।
सत्याऽहिंसादिधर्माणां तस्य सङ्गं परित्यजेत् ॥ २२० ॥

जो मनुष्य मंदिर तथा भगवान की मूर्तियों का खंडन करता हो, सत्य-अहिंसा आदि धर्मों का खंडन करता हो उसके संग का त्याग करें। (220)

गुर्वाश्रयविरोधी यो वैदिकशास्त्रखण्डकः।
भक्तिमार्गविरोधी स्यात् तस्य सङ्गं न चाऽऽचरेत् ॥ २२१ ॥

जो मनुष्य गुरुशरणागति का विरोध करता हो, वैदिक शास्त्रों का खंडन करता हो, भक्तिमार्ग का विरोध करता हो उसका संग न करें। (221)

बुद्धिमानपि लोके स्याद् व्यावहारिककर्मसु।
न सेव्यो भक्तिहीनश्चेच्छास्त्रपारङ्गतोऽपि वा ॥ २२२ ॥

कोई मनुष्य लोक में व्यावहारिक कार्यों में बुद्धिमान हो अथवा शास्त्रों में पारंगत भी हो फिर

भी यदि वह भक्ति से रहित हो तो उसका संग न करें। (222)

श्रद्धामेव तिरस्कृत्य ह्याध्यात्मिकेषु केवलम्।
पुरस्करोति यस्तर्कं तत्सङ्गमाचरेन्नहि॥ २२३॥

आध्यात्मिक विषयों में श्रद्धा का ही तिरस्कार करके जो मनुष्य केवल तर्क को ही प्राधान्य देता हो उसकी संगत न करें। (223)

सत्सङ्गेऽपि कुसङ्गो यो ज्ञेयः सोऽपि मुमुक्षुभिः।
तत्सङ्गश्च न कर्तव्यो हरिभक्तैः कदाचन॥ २२४॥

मुमुक्षु हरिभक्त सत्संग में छिपे हुए कुसंग को भी जानें तथा उसका संग कदापि न करें। (224)

हरौ गुरौ च प्रत्यक्षे मनुष्यभावदर्शनः।
शिथिलो नियमे यश्च न तस्य सङ्गमाचरेत्॥ २२५॥

जो मनुष्य प्रत्यक्ष भगवान में और गुरु में मनुष्यभाव देखता हो तथा नियम-पालन में शिथिल

हो उसका संग न करें। (225)

भक्तेषु दोषदृष्टिः स्याद् अवगुणैकभाषकः।
मनस्वी यो गुरुद्रोही न च तत्सङ्गमाचरेत्॥ २२६॥

जो मनुष्य भक्तों में दोष देखनेवाला, अवगुण की ही बातें करनेवाला, मनमानी करनेवाला तथा गुरुद्रोही हो उसकी संगत न करें। (226)

सत्कार्यनिन्दको यश्च सच्छास्त्रनिन्दको जनः।
सत्सङ्गनिन्दको यश्च तत्सङ्गमाचरेन्नहि॥ २२७॥

जो मनुष्य सत्कार्य, सत्शास्त्र तथा सत्संग की निंदा करता हो उसकी संगत न करें। (227)

वचनानां श्रुतेर्यस्य निष्ठाया भञ्जनं भवेत्।
गुरौ हरौ च सत्सङ्गे तस्य सङ्गं परित्यजेत्॥ २२८॥

जिसकी बातें सुनने से भगवान, गुरु तथा सत्संग के प्रति निष्ठा मिट जाए, उसके संग का परित्याग करें। (228)

भवेद् यो दृढनिष्ठावान् अक्षरपुरुषोत्तमे।
दृढभक्तिर्विवेकी च कुर्यात् तत्सङ्गमादरात्॥ २२९॥

जिसे अक्षरपुरुषोत्तम के प्रति दृढ निष्ठा हो, दृढ भक्ति हो तथा जो विवेकी हो, उसकी संगत आदरपूर्वक करें। (229)

हरेर्गुरोश्च वाक्येषु शङ्का यस्य न विद्यते।
विश्वासुर्बुद्धिमान् यश्च कुर्यात् तत्सङ्गमादरात्॥ २३०॥

भगवान तथा गुरु के वाक्यों में जिसे संशय न हो, जो विश्वासी हो, बुद्धिमान हो उसका संग आदर से करें। (230)

आज्ञायाः पालने नित्यं सोत्साहं तत्परो दृढः।
निर्मानः सरलो यश्च कुर्यात् तत्सङ्गमादरात्॥ २३१॥

आज्ञापालन में जो सदा उत्साह से तत्पर हो, दृढ हो; जो निर्मानी तथा सरल हो, उसकी संगत आदर के साथ करें। (231)

हरेर्गुरोश्चरित्रेषु दिव्येषु मानुषेषु यः।
सस्नेहं दिव्यतादर्शी कुर्यात् तत्सङ्गमादरात्॥ २३२॥

भगवान और गुरु के दिव्य तथा मनुष्य चरित्रों में जो स्नेहपूर्वक दिव्यता का दर्शन करता हो, उसकी संगत आदर के साथ करें। (232)

तत्परोऽन्यगुणग्राहे विमुखो दुर्गुणोक्तितः।
सुहृद्भावी च सत्सङ्गे कुर्यात् तत्सङ्गमादरात्॥ २३३॥

सत्संग में जो मनुष्य अन्य के गुणों को ग्रहण करने में तत्पर हो, दुर्गुणों की बात न करता हो, सुहृद्भावयुक्त हो, उसकी संगत आदरपूर्वक करें। (233)

लक्ष्यं यस्यैकमात्रं स्याद् गुरुहरिप्रसन्नता।
आचारेऽपि विचारेऽपि कुर्यात् तत्सङ्गमादरात्॥ २३४॥

जिसके आचार तथा विचार में गुरुहरि को प्रसन्न करने का एकमात्र लक्ष्य हो, उसकी संगत

आदरपूर्वक करें। (234)

स्वसंप्रदायग्रन्थानां यथाशक्ति यथारुचि।
संस्कृते प्राकृते वाऽपि कुर्यात् पठनपाठने॥ २३५॥

अपनी शक्ति और रुचि के अनुसार संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में अपने संप्रदाय के ग्रंथों का पठन-पाठन करें। (235)

स्वामिवार्ताः पठेन्नित्यं तथैव वचनामृतम्।
गुणातीतगुरूणां च चरितं भावतः पठेत्॥ २३६॥

वचनामृत, गुणातीतानंद स्वामी की बातें (उपदेशामृत) तथा गुणातीत गुरुओं के जीवनचरित्र नित्य भावपूर्वक पढ़ें। (236)

उपदेशाश्चरित्राणि स्वामिनारायणप्रभोः।
गुणातीतगुरूणां च सत्सङ्गिनां हि जीवनम्॥ २३७॥
अतस्तच्छ्रवणं कुर्याद् मननं निदिध्यासनम्।
महिम्ना श्रद्धया भक्त्या प्रत्यहं शान्तचेतसा॥ २३८॥

भगवान श्रीस्वामिनारायण तथा गुणातीत गुरुओं के उपदेश एवं चरित्र सत्संगियों का जीवन है। अतः सत्संगी प्रतिदिन उनका शांत चित्त से श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन महिमासहित, श्रद्धापूर्वक एवं भक्तिपूर्वक करें। (237-238)

सांप्रदायिकसिद्धान्त-बाधकरं हि यद् वचः।
पठ्यं श्रव्यं न मन्तव्यं संशयोत्पादकं च यत्॥ २३९॥

संप्रदाय के सिद्धांतों में बाधा डालनेवाले तथा संशय उत्पन्न करनेवाले वचनों को न पढ़ें, न सुनें और न ही मानें। (239)

स्वामिनारायणे भक्तिं परां दृढयितुं हृदि।
गुरुहरेः समादेशाच्चातुर्मास्ये व्रतं चरेत्॥ २४०॥

भगवान श्रीस्वामिनारायण के प्रति हृदय में पराभक्ति दृढ करने के लिए गुरुहरि के आदेश से चातुर्मास में व्रत करें। (240)

चान्द्रायणोपवासादिर्मन्त्रजपः प्रदक्षिणाः ।
कथाश्रुतिर्दण्डवच्च प्रणामा अधिकास्तदा ॥ २४१ ॥
इत्येवमादिरूपेण श्रद्धया प्रीतिपूर्वकम् ।
हरिप्रसन्नतां प्राप्तुं विशेषां भक्तिमाचरेत् ॥ २४२ ॥

इसमें चांद्रायण, उपवास इत्यादि तथा मंत्रजप, प्रदक्षिणा, कथाश्रवण, अधिक दंडवत् प्रणाम इत्यादि रूप से विशेष भक्ति का आचरण श्रद्धासहित, प्रीति-पूर्वक तथा भगवान की प्रसन्नता के लिए करें। (241-242)

सम्प्रदायस्य शास्त्राणां पठनं पाठनं तदा ।
यथारुचि यथाशक्ति कुर्याद् नियमपूर्वकम् ॥ २४३ ॥

उस समय अपनी रुचि तथा शक्ति के अनुसार संप्रदाय के शास्त्रों का नियमपूर्वक पठन-पाठन करें। (243)

सर्वैः सत्सङ्गिभिः कार्याः प्रीतिं वर्धयितुं हरौ।
उत्सवा भक्तिभावेन हर्षेणोल्लासतस्तथा॥ २४४॥

भगवान के प्रति प्रीति बढ़ाने के लिए सभी सत्संगी हर्ष, उल्लास और भक्तिभाव से उत्सव करें। (244)

जन्ममहोत्सवा नित्यं स्वामिनारायणप्रभोः।
ब्रह्माऽक्षरगुरूणां च कर्तव्या भक्तिभावतः॥ २४५॥

भगवान श्रीस्वामिनारायण तथा अक्षरब्रह्म गुरुओं के जन्ममहोत्सव भक्तिभावपूर्वक सदैव मनाएँ। (245)

हरेर्गुरोर्विशिष्टानां प्रसङ्गानां दिनेषु च।
सत्सङ्गिभिर्यथाशक्ति कार्याः पर्वोत्सवा जनैः॥ २४६॥

सत्संगीजन श्रीहरि तथा गुरु के विशिष्ट प्रसंगों के दिन यथाशक्ति पर्वोत्सव करें। (246)

सवाद्यं कीर्तनं कार्यं पर्वोत्सवेषु भक्तितः।
महिम्नश्च कथावार्ता करणीया विशेषतः॥ २४७॥

पर्वोत्सव में भक्तिपूर्वक वाद्ययंत्रों के साथ कीर्तन करें तथा विशेष रूप से महिमा की बातें करें। (247)

चैत्रशुक्लनवम्यां हि कार्यं श्रीरामपूजनम्।
कृष्णाऽष्टम्यां तु कर्तव्यं श्रावणे कृष्णपूजनम्॥ २४८॥

चैत्र शुक्ल नवमी के दिन भगवान श्रीरामचंद्रजी का पूजन करें। श्रावण कृष्ण अष्टमी (पूर्णिमांत महीनों के अनुसार भाद्रपद कृष्ण अष्टमी) के दिन भगवान श्रीकृष्ण का पूजन करें। (248)

शिवरात्रौ हि कर्तव्यं पूजनं शङ्करस्य च।
गणेशं भाद्रशुक्लायां चतुर्थ्यां पूजयेत् तथा॥ २४९॥

शिवरात्रि के दिन शंकर भगवान का पूजन करें। भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी के दिन गणपतिजी का पूजन करें। (249)

मारुतिम् आश्विने कृष्ण-चतुर्दश्यां हि पूजयेत्।
मार्गे मन्दिरसंप्राप्तौ तद्देवं प्रणमेद् हृदा॥ २५०॥

आश्विन कृष्ण चतुर्दशी (पूर्णिमांत महीनों के अनुसार कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी) के दिन हनुमानजी का पूजन करें। मार्ग में कोई मंदिर आए, तो उस देव को भावपूर्वक प्रणाम करें। (250)

विष्णुश्च शङ्करश्चैव पार्वती च गजाननः।
दिनकरश्च पञ्चैता मान्याः पूज्या हि देवताः॥ २५१॥

विष्णु[6], शंकर, पार्वती, गणपति तथा सूर्य – इन पाँच देवताओं को पूज्यभाव से मानें। (251)

परिरक्षेद् दृढां निष्ठाम् अक्षरपुरुषोत्तमे।
तथाऽपि नैव कर्तव्यं देवताऽन्तरनिन्दनम्॥ २५२॥

अक्षरपुरुषोत्तम महाराज में दृढ निश्चय रखें, तथापि किसी अन्य देव की निंदा न करें। (252)

6. यहाँ विष्णु शब्द से विष्णु के अवतारस्वरूप श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा श्रीसीता, श्रीराधा इत्यादि अर्थ भी अभिप्रेत है।

धर्मा वा संप्रदाया वा येऽन्ये तदनुयायिनः।
न ते द्वेष्या न ते निन्द्या आदर्तव्याश्च सर्वदा॥ २५३॥

अन्य धर्म, संप्रदाय या उनके अनुयायियों के प्रति द्वेष न करें। उनकी निंदा न करें। उनको सदैव आदर दें। (253)

मन्दिराणि च शास्त्राणि सन्तस्तथा कदाचन।
न निन्द्यास्ते हि सत्कार्या यथाशक्ति यथोचितम्॥ २५४॥

मंदिर, शास्त्र तथा संतों की निंदा कदापि न करें। अपनी शक्ति के अनुसार उनका यथोचित सत्कार करें। (254)

संयमनोपवासादि यद्यत्तपः समाचरेत्।
प्रसादाय हरेस्तत्तु भक्त्यर्थमेव केवलम्॥ २५५॥

संयम, उपवास इत्यादि जो-जो तप का आचरण करें, वह केवल भगवान की प्रसन्नता हेतु तथा भक्ति के लिए ही करें। (255)

एकादश्या व्रतं नित्यं कर्तव्यं परमादरात्।
तद्दिने नैव भोक्तव्यं निषिद्धं वस्तु कर्हिचित्॥ २५६॥

एकादशी का व्रत सदैव परम आदर से करें। उस दिन निषिद्ध वस्तु कदापि न खाएँ। (256)

उपवासे दिवानिद्रां प्रयत्नतः परित्यजेत्।
दिवसनिद्रया नश्येद् उपवासात्मकं तपः॥ २५७॥

उपवास में दिन के दौरान निद्रा का प्रयत्नपूर्वक त्याग करें। दिन की निद्रा से उपवासरूप तप का नाश होता है। (257)

स्वामिनारायणेनेह स्वयं यद्धि प्रसादितम्।
गुरुभिश्चाऽक्षरब्रह्म-स्वरूपैर्यत् प्रसादितम्॥ २५८॥
तेषां स्थानविशेषाणां यात्रां कर्तुं य इच्छति।
तद्यात्रां स जनः कुर्याद् यथाशक्ति यथारुचि॥ २५९॥

भगवान श्रीस्वामिनारायण ने स्वयं जिन स्थानों को प्रसादीभूत किया है तथा अक्षरब्रह्म गुरुओं ने

जिन स्थानों को प्रसादीभूत किया है, उन स्थानों की यात्रा करने की जिसे इच्छा हो, वह यथाशक्ति अपनी रुचि के अनुसार करे। (258-259)

अयोध्यां मथुरां काशीं केदारं बदरीं व्रजेत्।
रामेश्वरादि तीर्थं च यथाशक्ति यथारुचि॥ २६० ॥

अयोध्या, मथुरा, काशी, केदारनाथ, बदरीनाथ तथा रामेश्वर इत्यादि तीर्थों की यात्रा यथाशक्ति अपनी रुचि के अनुसार करे। (260)

मर्यादा पालनीयैव सर्वैर्मन्दिरमागतैः।
नार्यो नैव नरैः स्पृश्या नारीभिश्च नरास्तथा॥ २६१ ॥

मंदिर में आए हुए सभी दर्शनार्थी अपनी मर्यादा का पालन अवश्य करें। मंदिर में आए हुए पुरुष, महिला का स्पर्श न करें तथा महिलाएँ, पुरुष का स्पर्श न करें। (261)

नियममनुसृत्यैव सत्सङ्गस्य तु मन्दिरे।
वस्त्राणि परिधेयानि स्त्रीभिः पुम्भिश्च सर्वदा॥ २६२॥

मंदिर में महिलाएँ तथा पुरुष सदा सत्संग के नियमों के अनुसार वस्त्र धारण करें। (262)

गच्छेद् यदा दर्शनार्थं भक्तजनो हरेर्गुरोः।
रिक्तेन पाणिना नैव गच्छेत् तदा कदाचन॥ २६३॥

भक्तजन भगवान अथवा गुरु के दर्शन करने खाली हाथ कदापि न जाएँ। (263)

आदित्यचन्द्रयोर्ग्राह-काले सत्सङ्गिभिः समैः।
परित्यज्य क्रियाः सर्वाः कर्तव्यं भजनं हरेः॥ २६४॥

निद्रां च भोजनं त्यक्त्वा तदैकत्रोपविश्य च।
कर्तव्यं ग्राहमुक्त्यन्तं भगवत्कीर्तनादिकम्॥ २६५॥

सभी सत्संगी सूर्य अथवा चन्द्र के ग्रहणकाल में सभी क्रियाओं का त्याग कर भगवान का भजन करें। उस समय निद्रा तथा भोजन का परित्याग

कर, एक स्थान पर बैठकर, ग्रहण पूर्ण होने तक भगवत्कीर्तन आदि करें।[7] (264-265)

ग्राहमुक्तौ सवस्त्रं हि कार्यं स्नानं समैर्जनैः।
त्यागिभिश्च हरिः पूज्यो देयं दानं गृहस्थितैः॥ २६६॥

ग्रहण की मुक्ति होने पर सभी जन सवस्त्र स्नान करें। त्यागाश्रमी भगवान की पूजा करें तथा गृहस्थ दान करें। (266)

जन्मनो मरणस्याऽपि विधयः सूतकादयः।
सत्सङ्गरीतिमाश्रित्य पाल्याः श्राद्धादयस्तथा॥ २६७॥

जन्म-मरण की सूतक-मृतक विधियों तथा श्राद्ध आदि विधियों का सत्संग की रीति[8] के अनुसार पालन करें। (267)

---

7. ग्रहण संबंधी विशेष नियम परिशिष्ट में दिए गए हैं।
8. विशेष जानकारी के लिए परिशिष्ट देखें।

प्रायश्चित्तमनुष्ठेयं जाते त्वयोग्यवर्तने।
परमात्मप्रसादार्थं शुद्धेन भावतस्तदा॥ २६८॥

किसी अयोग्य आचरण के हो जाने पर भगवान को प्रसन्न करने के लिए शुद्ध भाव से प्रायश्चित्त करें। (268)

आपत्काले तु सत्येव ह्यापदो धर्ममाचरेत्।
अल्पापत्तिं महापत्तिं मत्वा धर्मं न संत्यजेत्॥ २६९॥

आपत्काल में ही आपद्धर्म का आचरण करें। अल्प आपत्ति को बड़ी आपत्ति मानकर धर्म का त्याग न करें। (269)

आपत्तौ कष्टदायां तु रक्षा स्वस्य परस्य च।
यथैव स्यात् तथा कार्यं रक्षता भगवद्बलम्॥ २७०॥

कष्टदायक आपत्ति के अवसर पर भगवान के बल से जिस प्रकार अपनी और अन्य की रक्षा हो, वैसा आचरण करें। (270)

आपत्तौ प्राणनाशिन्यां प्राप्तायां तु विवेकिना।
गुर्वादेशाऽनुसारेण प्राणान् रक्षेत् सुखं वसेत्॥ २७१ ॥

प्राणघातक आपत्ति के समय विवेकी मनुष्य गुरु के आदेशों का अनुसरण कर प्राणों की रक्षा करे और सुखपूर्वक रहे। (271)

सत्सङ्गरीतिमाश्रित्य गुर्वादेशाऽनुसारतः।
परिशुद्धेन भावेन सर्वैः सत्सङ्गिभिर्जनैः॥ २७२ ॥
देशं कालमवस्थां च स्वशक्तिमनुसृत्य च।
आचारो व्यवहारश्च प्रायश्चित्तं विधीयताम्॥ २७३ ॥

सभी सत्संगीजन सत्संग की रीति के अनुसार, गुरु के आदेशानुसार तथा देश, काल, अवस्था के अनुसार परिशुद्ध भाव से यथाशक्ति आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त करें। (272-273)

जीवनम् उन्नतिं याति धर्मनियमपालनात्।
अन्यश्चाऽपि सदाचारपालने प्रेरितो भवेत्॥ २७४॥

धर्म-नियमों का पालन करने से जीवन उन्नत होता है और अन्य को भी सदाचार के पालन की प्रेरणा मिलती है। (274)

भूतप्रेतपिशाचादेर्भयं कदापि नाऽऽप्नुयात्।
ईदृक्शङ्काः परित्यज्य हरिभक्तः सुखं वसेत्॥ २७५॥

भगवान के भक्तजन कदापि भूत, प्रेत, पिशाच आदि का भय न रखें। ऐसी आशंकाओं का परित्याग कर सुखपूर्वक रहें। (275)

शुभाऽशुभप्रसङ्गेषु महिमसहितं जनः।
पवित्रां सहजानन्द-नामावलिं पठेत् तथा॥ २७६॥

शुभ तथा अशुभ प्रसंगों में महिमासहित पवित्र सहजानंद नामावली का पाठ करें। (276)

कालो वा कर्म वा माया प्रभवेन्नैव कर्हिचित्।
अनिष्टकरणे नूनं सत्सङ्गाऽऽश्रयशालिनाम्॥ २७७॥

जिन्हें सत्संग का आश्रय प्राप्त हुआ है, उनका

अनिष्ट करने में काल, कर्म या माया कदापि समर्थ नहीं हैं। (277)

अयोग्यविषयाश्चैवम् अयोग्यव्यसनानि च।
आशङ्काः संपरित्याज्याः सत्सङ्गमाश्रितैः सदा॥ २७८॥

सत्संगी अनुचित विषय, व्यसन तथा आशंकाओं का सदैव त्याग करें। (278)

नैव मन्येत कर्तृत्वं कालकर्मादिकस्य तु।
मन्येत सर्वकर्तारम् अक्षरपुरुषोत्तमम्॥ २७९॥

काल, कर्म आदि को कर्ता न मानें। अक्षर-पुरुषोत्तम महाराज को सर्वकर्ता मानें। (279)

विपत्तिषु धरेद्धैर्यं प्रार्थनं यत्नमाचरेत्।
भजेत दृढविश्वासम् अक्षरपुरुषोत्तमे॥ २८०॥

विपत्ति के समय धैर्य धारण करें, प्रार्थना करें और पुरुषार्थ करें तथा अक्षरपुरुषोत्तम महाराज के प्रति दृढ विश्वास रखें। (280)

त्यागाऽऽश्रमेच्छुना दीक्षा ग्राह्या ब्रह्माऽक्षराद् गुरोः।
ब्रह्मचर्यं सदा सर्वैः पाल्यं त्यागिभिरष्टधा॥ २८१॥

जिन्हें त्यागाश्रम ग्रहण करने की इच्छा हो, वे अक्षरब्रह्मस्वरूप गुरु से दीक्षा ग्रहण करें। सभी त्यागाश्रमी अष्टप्रकार से ब्रह्मचर्य का सदैव पालन करें। (281)

धनं तु त्यागिभिस्त्याज्यं रक्ष्यं स्वीयतया न च।
स्पृश्यं नैवाऽपि वित्तं च त्यागिभिस्तु कदाचन॥ २८२॥

त्यागाश्रमी, धन का त्याग करें तथा धन को अपना बनाकर न रखें। धन का स्पर्श भी कदापि न करें। (282)

त्यागिभिः प्रीतिवृद्ध्यर्थम् अक्षरपुरुषोत्तमे।
निष्कामत्वं सदा धार्यं निर्लोभत्वं सदैव च॥ २८३॥
निःस्वादत्वं सदा धार्यं निःस्नेहत्वं तथैव च।
निर्मानत्वं सदा धार्यम् अन्ये च त्यागिनो गुणाः॥ २८४॥

अक्षरपुरुषोत्तम महाराज में प्रीति बढ़ाने के लिए त्यागाश्रमी निष्काम, निर्लोभ, निःस्वाद, निःस्नेह, निर्मान एवं अन्य त्यागाश्रम संबंधी गुणों को धारण करें। (283-284)

स्वाऽऽत्मब्रह्मैकतां प्राप्य स्वामिनारायणो हरिः।
सर्वदा भजनीयो हि त्यागिभिर्दिव्यभावतः॥ २८५॥

अपनी आत्मा की ब्रह्म के साथ एकता प्राप्त कर त्यागाश्रमी दिव्यभाव से सदा स्वामिनारायण भगवान की भक्ति करें। (285)

त्यागो न केवलं त्यागस्त्यागो भक्तिमयस्त्वयम्।
परित्यागो ह्ययं प्राप्तुम् अक्षरपुरुषोत्तमम्॥ २८६॥

यह त्याग केवल त्याग नहीं है, परंतु यह तो भक्तिमय त्याग है। यह त्याग अक्षरपुरुषोत्तम महाराज को प्राप्त करने के लिए है। (286)

आज्ञोपासनसिद्धान्ताः सर्वजीवहितावहाः।
दुःखविनाशका एते परमसुखदायकाः॥ २८७॥

आज्ञा–उपासना संबंधी ये सिद्धांत सर्वजीव–हितावह, दुःखविनाशक एवं परम सुखदायक हैं। (287)

एतच्छास्त्रानुसारेण यः प्रीत्या श्रद्धया जनः।
आज्ञोपासनयोर्दार्ढ्यं प्रकुर्यात् स्वस्य जीवने॥ २८८॥
हरेः प्रसन्नतां प्राप्य तत्कृपाभाजनो भवेत्।
जीवन्नेव स्थितिं ब्राह्मीं शास्त्रोक्तामाप्नुयात् स च॥ २८९॥
धर्मैकान्तिकसंसिद्धिम् आप्नुते दिव्यमक्षरम्।
शाश्वतं भगवद्धाम मुक्तिमात्यन्तिकीं सुखम्॥ २९०॥

इस शास्त्र का अनुसरण करके जो जन श्रद्धा एवं प्रीति से अपने जीवन में आज्ञा–उपासना की दृढता करता है, वह भगवान की प्रसन्नता प्राप्त कर उनकी कृपा का पात्र बनता है। शास्त्रों में कही गई

ब्राह्मी स्थिति इसी जीवनकाल में प्राप्त कर लेता है, एकांतिक धर्म सिद्ध कर लेता है। अंत में भगवान के शाश्वत, दिव्य अक्षरधाम को प्राप्त करता है, मुक्ति प्राप्त करता है एवं परम सुख प्राप्त करता है। (288-290)

अक्षरब्रह्मसाधर्म्यं संप्राप्य दासभावतः।
पुरुषोत्तमभक्तिर्हि मुक्तिरात्यन्तिकी मता॥ २९१॥

अक्षरब्रह्म के साधर्म्य को प्राप्त कर पुरुषोत्तम की दासभाव से भक्ति करना ही आत्यंतिक मुक्ति मानी गई है। (291)

संक्षिप्याऽत्र कृतं ह्येवम् आज्ञोपासनवर्णनम्।
तद्विस्तरं विजानीयात् सांप्रदायिकशास्त्रतः॥ २९२॥

इस प्रकार संक्षिप्त रूप से यहाँ आज्ञा एवं उपासना का वर्णन किया है। इसका विस्तार संप्रदाय के शास्त्रों से जानें। (292)

एतत्सत्सङ्गदीक्षेति शास्त्रस्य प्रतिवासरम्।
कार्यः सत्सङ्गिभिः पाठ एकाग्रचेतसा जनैः॥ २९३॥
पठने चाऽसमर्थैस्तु श्रव्यं तत् प्रीतिपूर्वकम्।
आचरितुं च कर्तव्यः प्रयत्नः श्रद्धया तथा॥ २९४॥

सत्संगी जन प्रतिदिन इस 'सत्संगदीक्षा' शास्त्र का एकाग्रचित्त होकर पाठ करें। पाठ करने में जो असमर्थ हों, वे प्रीतिपूर्वक इसका श्रवण करें। एवं तदनुसार श्रद्धापूर्वक आचरण करने का प्रयत्न करें। (293-294)

परमात्मा परं ब्रह्म स्वामिनारायणो हरिः।
सिद्धान्तं स्थापयामास ह्यक्षरपुरुषोत्तमम्॥ २९५॥
गुरवश्च गुणातीताश्चक्रुस्तस्य प्रवर्तनम्।
विरचितमिदं शास्त्रं तत्सिद्धान्ताऽनुसारतः॥ २९६॥

परमात्मा परब्रह्म भगवान श्रीस्वामिनारायण ने अक्षरपुरुषोत्तम सिद्धांत की स्थापना की तथा

गुणातीत गुरुओं ने उसका प्रवर्तन किया। उस सिद्धांत के अनुसार इस शास्त्र की रचना की है। (295-296)

कृपयैवाऽवतीर्णोऽत्र मुमुक्षुमोक्षहेतुना।
परब्रह्म दयालुर्हि स्वामिनारायणो भुवि॥ २९७॥
सकलाऽऽश्रितभक्तानां योगक्षेमौ तथाऽवहत्।
व्यधात् स द्विविधं श्रेय आमुष्मिकं तथैहिकम्॥ २९८॥

परब्रह्म दयालु भगवान श्रीस्वामिनारायण केवल कृपा करके मुमुक्षुओं के मोक्ष के लिए इस लोक में अवतीर्ण हुए। उन्होंने सकल आश्रित भक्तों के योगक्षेम का वहन किया और इहलौकिक तथा पारलौकिक, दोनों प्रकार का कल्याण किया। (297-298)

सर्वत्रैवाऽभिवर्षन्तु सदा दिव्याः कृपाऽऽशिषः।
परमात्मपरब्रह्म - स्वामिनारायणप्रभोः॥ २९९॥

परमात्मा परब्रह्म भगवान श्रीस्वामिनारायण के दिव्य कृपाशिष सदा सर्वत्र बरसते रहें। (299)

सर्वेषां सर्वदुःखानि तापत्रयमुपद्रवाः।
क्लेशास्तथा विनश्येयुरज्ञानं संशया भयम्॥ ३००॥

सभी के सर्व दुःख, तीनों ताप, उपद्रव, क्लेश, अज्ञान, संशय तथा भय का विनाश हो। (300)

भगवत्कृपया सर्वे स्वास्थ्यं निरामयं सुखम्।
प्राप्नुवन्तु परां शान्तिं कल्याणं परमं तथा॥ ३०१॥

भगवान की कृपा से सभी निरामय स्वास्थ्य, सुख, परम शांति तथा परम कल्याण प्राप्त करें। (301)

न कश्चित् कस्यचित् कुर्याद् द्रोहं द्वेषं तथा जनः।
सेवन्तामादरं सर्वे सर्वदैव परस्परम्॥ ३०२॥

कोई मनुष्य किसी का द्रोह एवं द्वेष न करे। सभी सदैव परस्पर आदरभाव रखें। (302)

सर्वेषां जायतां प्रीतिर्दृढा निष्ठा च निश्चयः।
विश्वासो वर्धतां नित्यम् अक्षरपुरुषोत्तमे॥ ३०३॥

अक्षरपुरुषोत्तम में सभी का दृढ स्नेह, निष्ठा, निश्चय तथा विश्वास सदैव अभिवृद्धि प्राप्त करें। (303)

भवन्तु बलिनः सर्वे भक्ताश्च धर्मपालने।
आप्नुयुः सहजानन्द-परात्मनः प्रसन्नताम्॥ ३०४॥

सभी भक्त धर्मपालन में बलवान बनें और सहजानंद परमात्मा की प्रसन्नता प्राप्त करें। (304)

प्रशान्तैर्जायतां युक्तो मनुष्यैर्धर्मशालिभिः।
संसारः साधनाशीलैरध्यात्ममार्गसंस्थितैः॥ ३०५॥

यह संसार प्रशांत, धर्मवान, साधनाशील तथा अध्यात्ममार्ग पर चलनेवाले मनुष्यों से युक्त हो। (305)

ऐक्यं मिथः सुहृद्भावो मैत्री कारुण्यमेव च।
सहनशीलता स्नेहः सर्वजनेषु वर्धताम्॥ ३०६॥

सभी मनुष्यों में परस्पर एकता, सुहृद्भाव, मैत्री, करुणा, सहनशीलता तथा स्नेह की अभिवृद्धि हो। (306)

सत्सङ्गे दिव्यसम्बन्धाद् ब्रह्मणः परब्रह्मणः।
सर्वेषां जायतां दार्ढ्यं निर्दोषदिव्यभावयोः॥ ३०७॥

ब्रह्म एवं परब्रह्म के दिव्य संबंध से सत्संग में सभी में निर्दोषभाव एवं दिव्यभाव की दृढता हो। (307)

अक्षररूपतां सर्वे संप्राप्य स्वात्मनि जनाः।
प्राप्नुयुः सहजानन्दे भक्तिं हि पुरुषोत्तमे॥ ३०८॥

सभी जन अपनी आत्मा में अक्षररूपता पाकर पुरुषोत्तम सहजानंद की भक्ति प्राप्त करें। (308)

माघस्य शुक्लपञ्चम्याम् आरब्धमस्य लेखनम्।
पवित्रे विक्रमाब्दे हि रसर्षिखद्विसंमिते॥ ३०९॥
चैत्रशुक्लनवम्यां च स्वामिनारायणप्रभोः।
तच्च संपूर्णतां प्राप्तं दिव्यजन्ममहोत्सवे॥ ३१०॥

विक्रम संवत् 2076 के माघ शुक्ल पंचमी को इस शास्त्र के लेखन का आरंभ हुआ एवं चैत्र शुक्ल नवमी को भगवान श्रीस्वामिनारायण के दिव्य जन्म-महोत्सव पर यह संपूर्ण हुआ। (309-310)

उपास्यसहजानन्द-हरये परब्रह्मणे।
मूलाऽक्षरगुणातीतानन्दाय स्वामिने तथा॥ ३११॥
भगतजीमहाराज - साक्षाद्विज्ञानमूर्तये।
यज्ञपुरुषदासाय सत्यसिद्धान्तरक्षिणे॥ ३१२॥
वात्सल्याऽऽर्द्राऽऽत्मने नित्यम् आनन्दब्रह्मयोगिने।
विश्ववन्द्यविनम्राय गुरवे प्रमुखाय च॥ ३१३॥

अञ्जलिः शास्त्ररूपोऽयं सानन्दं भक्तिभावतः।
अर्प्यते प्रमुखस्वामि-जन्मशताब्दिपर्वणि॥ ३१४॥

उपास्य परब्रह्म सहजानंद श्रीहरि तथा मूल अक्षर गुणातीतानंद स्वामी, साक्षात् ज्ञानमूर्ति भगतजी महाराज, सत्य सिद्धांत के रक्षक यज्ञपुरुषदासजी (शास्त्रीजी महाराज), सदा वात्सल्य से प्लावित एवं आनंदमय ब्रह्म योगीजी महाराज तथा विश्ववंदनीय एवं विनम्र गुरु प्रमुखस्वामीजी महाराज को यह शास्त्ररूप अंजलि उन्ही के जन्म शताब्दी के पर्व पर सानंद भक्तिभावपूर्वक अर्पण की जाती है। (311-314)

तनोतु सकले विश्वे परमानन्दमङ्गलम्।
स्वामिनारायणः साक्षाद् अक्षरपुरुषोत्तमः॥ ३१५॥

भगवान श्रीस्वामिनारायण अर्थात् साक्षात् अक्षर-पुरुषोत्तम महाराज सकल विश्व में परम आनंद-मंगल

का विस्तार करें। (315)

इति परब्रह्मस्वामिनारायणप्रबोधिताऽऽज्ञोपासन-
सिद्धान्तनिरूपकं प्रकटब्रह्मस्वरूपश्रीमहन्तस्वामि-
महाराजैः स्वहस्ताऽक्षरैर्गुर्जरभाषया लिखितं
महामहोपाध्यायेन साधुभद्रेशदासेन च संस्कृतश्लोकेषु
निबद्धं सत्सङ्गदीक्षेति शास्त्रं सम्पूर्णम्।

सहजानन्द-नामावलिपाठः

ॐ श्री स्वामिनारायणाय नमः
ॐ श्री साक्षाद्-अक्षरपुरुषोत्तमाय नमः
ॐ श्री परमात्मने नमः
ॐ श्री परब्रह्मणे नमः
ॐ श्री भगवते नमः
ॐ श्री पुरुषोत्तमाय नमः
ॐ श्री अक्षरधामवासाय नमः
ॐ श्री दिव्य-सुंदर-विग्रहाय नमः
ॐ श्री साकाराय नमः
ॐ श्री द्विभुजाय नमः
ॐ श्री अनादये नमः
ॐ श्री साकाराक्षर-सेविताय नमः
ॐ श्री दिव्यासन-उपविष्टाय नमः
ॐ श्री अनंतमुक्त-पूजिताय नमः
ॐ श्री सर्वकरण-शक्ताय नमः
ॐ श्री समर्थाय नमः
ॐ श्री भक्तिनंदनाय नमः
ॐ श्री दिव्यजन्मने नमः
ॐ श्री महाराजाय नमः
ॐ श्री दिव्यकर्मणे नमः

ॐ श्री महामतये नमः
ॐ श्री नारायणाय नमः
ॐ श्री घनश्यामाय नमः
ॐ श्री नीलकंठाय नमः
ॐ श्री तपःप्रियाय नमः
ॐ श्री अनासक्ताय नमः
ॐ श्री तपस्विने नमः
ॐ श्री अलिप्ताय नमः
ॐ श्री भक्तवत्सलाय नमः
ॐ श्री नैकमोक्षार्थ-यात्राय नमः
ॐ श्री सर्वात्मने नमः
ॐ श्री दिव्यताप्रदाय नमः
ॐ श्री स्वेच्छा-धृतावताराय नमः
ॐ श्री सर्वावतार-कारणाय नमः
ॐ श्री ईश्वरेशाय नमः
ॐ श्री स्वयंसिद्धाय नमः
ॐ श्री भक्तसंकल्प-पूरकाय नमः
ॐ श्री संतीर्ण-सरयूवारये नमः
ॐ श्री हिमगिरि-वनप्रियाय नमः
ॐ श्री पुलहाश्रम-वासिने नमः

ॐ श्री पवित्रीकृत-मानसाय नमः
ॐ श्री साक्षराय नमः
ॐ श्री सहजानंदाय नमः
ॐ श्री सर्वानंदप्रदाय नमः
ॐ श्री प्रभवे नमः
ॐ श्री प्रणीतदिव्य-सत्संगाय नमः
ॐ श्री हरिकृष्णाय नमः
ॐ श्री सुखाश्रयाय नमः
ॐ श्री सर्वज्ञाय नमः
ॐ श्री सर्वकर्त्रे नमः
ॐ श्री सर्वभर्त्रे नमः
ॐ श्री नियामकाय नमः
ॐ श्री सदासर्व-समुत्कृष्टाय नमः
ॐ श्री शाश्वत-शांति-दायकाय नमः
ॐ श्री धर्मसुताय नमः
ॐ श्री सदाचारिणे नमः
ॐ श्री सदाचार-प्रवर्तकाय नमः
ॐ श्री सधर्म-भक्ति-संगोप्त्रे नमः
ॐ श्री दुराचार-विदारकाय नमः
ॐ श्री दयालवे नमः
ॐ श्री कोमलात्मने नमः
ॐ श्री परदुःखासहाय नमः
ॐ श्री मृदवे नमः
ॐ श्री संत्यक्त-सर्वथाहिंसाय नमः
ॐ श्री हिंसावर्जित-यागकृते नमः
ॐ श्री सकलवेद-वेद्याय नमः
ॐ श्री वेद-सत्यार्थ-बोधकाय नमः
ॐ श्री वेदज्ञाय नमः
ॐ श्री वेदसाराय नमः
ॐ श्री वैदिकधर्म-रक्षकाय नमः
ॐ श्री दिव्य-चेष्टा-चरित्राय नमः
ॐ श्री सर्वकारण-कारणाय नमः
ॐ श्री अंतर्यामिणे नमः
ॐ श्री सदादिव्याय नमः
ॐ श्री ब्रह्माधीशाय नमः
ॐ श्री परात्पराय नमः
ॐ श्री दर्शिताक्षर-भेदाय नमः
ॐ श्री जीवेशभेद-दर्शकाय नमः
ॐ श्री माया-नियामकाय नमः
ॐ श्री पंचतत्त्व-प्रकाशकाय नमः

ॐ श्री सर्व-कल्याण-कारिणे नमः
ॐ श्री सर्वकर्म-फलप्रदाय नमः
ॐ श्री सकल-चेतन-उपास्याय नमः
ॐ श्री शुद्धोपासन-बोधकाय नमः
ॐ श्री अक्षराधिपतये नमः
ॐ श्री शुद्धाय नमः
ॐ श्री शुद्धभक्ति-प्रवर्तकाय नमः
ॐ श्री स्वामिनारायणे-त्याख्य-
दिव्यमंत्र-प्रदायकाय नमः
ॐ श्री स्वप्रतिमा-प्रतिष्ठा-कृते नमः
ॐ श्री स्व-संप्रदाय-कारकाय नमः
ॐ श्री प्रस्थापित-स्वसिद्धांताय नमः
ॐ श्री ब्रह्मज्ञान-प्रकाशकाय नमः
ॐ श्री गुणातीतोक्त-माहात्म्याय नमः
ॐ श्री अक्षरात्म-ऐक्य-प्रबोधकाय नमः
ॐ श्री मूलाक्षर-गुणातीतस्वरूप-
परिचायकाय नमः
ॐ श्री भक्तिलभ्याय नमः
ॐ श्री कृपासाध्याय नमः
ॐ श्री भक्तदोष-निवारकाय नमः

ॐ श्री शास्त्रि-स्थापित-
सब्रह्म-धातुमूर्तये नमः
ॐ श्री अलौकिकाय नमः
ॐ श्री ब्रह्मद्वारक-प्राकट्याय नमः
ॐ श्री सम्यक्-अक्षर-संस्थिताय नमः
ॐ श्री समाधिकारकाय नमः
ॐ श्री निखिलपाप-नाशकाय नमः
ॐ श्री सर्वतंत्र-स्वतंत्राय नमः
ॐ श्री मायिकगुण-वर्जिताय नमः
ॐ श्री दिव्यानंत-गुणाय नमः
ॐ श्री अनंत-नाम्ने नमः
ॐ श्री अक्षरपुरुषोत्तम-
महाराजाय नमः
ॐ श्री गुणातीतानंदस्वामि-
महाराजाय नमः
ॐ श्री भगतजीमहाराजाय नमः
ॐ श्री शास्त्रिजीमहाराजाय नमः
ॐ श्री योगिजीमहाराजाय नमः
ॐ श्री प्रमुखस्वामिमहाराजाय नमः
ॐ श्री महंतस्वामिमहाराजाय नमः

॥ इति अष्टाधिकशत-सहजानंद-नामावलिपाठः संपूर्णः ॥

परिशिष्ट

सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण के अवसर पर पालन करने योग्य आवश्यक सूचनाएँ

1. ग्रहण के आरंभिक समय को स्पर्श कहा जाता है। ग्रहण की समाप्ति काल को मोक्ष कहा जाता है।
2. स्पर्श से पूर्व कुछ समय तक खानपान के नियमों का पालन अति आवश्यक होता है। इस समय को वेध कहा जाता है। सूर्यग्रहण के स्पर्श से पूर्व 12 घंटों एवं चंद्रग्रहण के स्पर्श से पूर्व 9 घंटों तक वेध लगता है। रोगी, वृद्ध एवं बालकों के लिए 2 घंटे और 24 मिनट का वेध कहा गया है। वेध के दौरान खानपान का संपूर्ण परित्याग करें। वेध के दौरान केवल

पानी पी सकते हैं। ग्रहण के दौरान तो पानी भी सर्वथा निषिद्ध है।

3. ग्रहण के स्पर्श से लेकर मोक्ष तक एक स्थान पर बैठकर भजन स्मरण करने का शास्त्रोक्त विधान है।
4. ग्रहण के दौरान सूती वस्त्रों का स्पर्श पूर्णतया वर्जित है।
5. ग्रहण के मोक्ष के पश्चात् सवस्त्र स्नान करके दान करने का शास्त्रोक्त विधान है।

जन्म तथा मरण के अवसर पर पालन करने योग्य सूतक और मृतक विधियाँ

सगे-संबंधियों के जन्म तथा मरण के अवसर पर आवश्यक पालन करने योग्य सूतक एवं मृतक विधियों के दौरान वस्त्र सहित स्नान करने के पश्चात्

भगवान की भक्ति, मंदिर में देवदर्शन, सत्संग, कथा–श्रवण, मालाजाप, नित्यपूजा, आरती, परिक्रमा आदि भक्ति संबंधी क्रियाओं में किसी भी प्रकार का दोष नहीं है।

ब्रह्मस्वरूप श्रीप्रागजी भक्त

ब्रह्मस्वरूप श्रीशास्त्रीजी महाराज

ब्रह्मस्वरूप श्रीयोगीजी महाराज

ब्रह्मस्वरूप श्रीप्रमुख स्वामी महाराज

प्रकट ब्रह्मस्वरूप
श्रीमहंत स्वामी महाराज

‘आज्ञा व उपासना
ये दो पंख हैं, इनसे
सहज ही अक्षरधाम में जा पायेंगे,
इसमें कोई संशय नहीं है ।’

– अक्षरब्रह्म श्रीगुणातीतानंद स्वामी